काव्य में उदात्त तत्त्व

[लोंगिनुस (लोंजाइनस) के काव्य सिद्धान्तों का विवेचन
और 'पेरि इप्सुस' का हिन्दी अनुवाद]

भूमिका-लेखक
डा० नगेन्द्र, एम० ए०, डी० लिट०

अनुवादक
डा० नगेन्द्र
श्री नेमिचन्द्र जैन

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली 

मूल्य तीन रुपये पचास नये पैसे
द्वितीय सस्करण फरवरी १९६१
प्रकाशक राजपाल एण्ड स ज़ दिल्ली
मुद्रक हिदी प्रिंटिंग प्रेस दिल्ली

निवेदन

'अरस्तू का काव्यशास्त्र' के पश्चात 'काव्य मे उदात्त तत्त्व' हमारा इस दिशा म दूसरा प्रकाशन है। हम आशा है कि भारतीय जिज्ञासु के लिए पाश्चात्य काव्यशास्त्र के भाण्डार का उदघाटन करने मे यह ग्र थ भी यत्किंचित योगदान कर सकेगा।

'काव्य मे उदात्त तत्त्व 'ऑन दि सब्लाइम' का उसी प्रकार रूपान्तर नही है जिस प्रकार 'ऑन दि सब्लाइम मूल शीर्षक 'पेरि इप्सुस' का अनुवाद नहीं है। किन्तु ग्र थ का वास्तविक प्रतिपाद्य यही है और इसीलिए सवथा शाब्दिक रूपान्तर न होने पर भी यह शीर्षक अपेक्षाकृत अधिक व्यजक और स्पष्ट है। 'अरस्तू का काव्यशास्त्र' की भाति यहा भी हमने यूनानी नामो के मूल उच्चारण ही देने का प्रयत्न किया है सुविधा के लिए अधिक प्रचलित अग्रजी उच्चारण भी यही-कहीं कोष्ठक म दिए गए हैं। सब मिलाकर नामा के प्रत्यकन के लिए यही रीति अधिक शुद्ध और उपादय है।

प्रस्तुत ग्र थ के अनुवाद म हम हिन्दी के सुपरिचित कवि लेखक श्री नेमिचन्द्र जन का बहुमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ है नाम-परिचय शीर्षक से टिप्पणिया तो सभी उन्हीकी लिखी हुई हैं। मैं उनके प्रति आभार प्रकट करता हू।

दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली—८
विजयादशमी, २०१५

——नगेन्द्र

द्वितीय संस्करण

'काव्य म उदात्त तत्त्व' का यह दूसरा सस्करण है। इसके प्रकाशन म सवश्री राजपाल एण्ड स ज ने जिस सुरुचि का और विक्रय म जिस सुव्यवस्था का परिचय दिया है उसके लिए वे साधुवाद के पात्र हैं। इस प्रकार के अमर ग्र थ के नवीन सस्करण म परिवतन परिवद्धन का तो प्रश्न ही नहीं उठता, अत इसे हम यथापूव ही सुधी पाठकों की सेवा में प्रस्तुत कर रहे हैं। हा पहले सस्करण मे मुद्रण की जो एकाध अशुद्धि रह गई थी उसे ठीक कर दिया गया है।

१ जनवरी १९६१ —नगेन्द्र

भूमिका

लेखक—डा० नगेन्द्र,
एम० ए०, डी० लिट०

काव्य में उदात्त तत्त्व

प्रस्तुत निबन्ध और उसका लेखक—

यूनानी काव्यशास्त्र में अरस्तू के प्रसिद्ध निबन्ध 'पेरि पोइतिकेस' के बाद दूसरा स्थान है 'पेरि इप्सुस' का। 'पेरि इप्सुस' का शब्दार्थ है 'औदात्त्य (ऊंचाई) के विषय में'—जिसका अंगरेजी रूपान्तर 'ऑन दि सब्लाइम' पाश्चात्य साहित्य में अत्यन्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है। भारतीय काव्यशास्त्र के प्रख्यात ग्रन्थ 'वक्रोक्तिजीवितम्' (कुन्तक) की तरह 'पेरि इप्सुस' भी शताब्दियों तक विस्मृति के गर्भ में पड़ा रहा। रचनाकाल के लगभग हजार डेढ़ हजार वर्ष बाद सन् १५५४ ई० में पहली बार प्रस्तुत निबन्ध का प्रकाशन हुआ—जिसपर लेखक-रूप में दिओ्रो युसिअस लागिनुस (अंगरेजी उच्चारण—डाइनोसियस लांजाइनस) का नाम अंकित था। इसके उपरान्त यूरोप की अनेक भाषाओं में ग्रन्थ के एक के बाद एक अनुवाद प्रकाशित होते गए और सबमें लोंगिनुस (लोंजाइनस) का ही, बिना किसी प्रकार के तर्क वितर्क के, लेखक रूप में स्वीकार किया जाता रहा। किन्तु उन्नीसवीं शती के आरम्भ में अनेक शंकाएं उठने लगीं और उनके मूल में कई कारण थे—(१) लोंगिनुस की प्रामाणिक ग्रंथ-सूची में उक्त निबन्ध का अन्तर्भाव नहीं है। (२) निबन्ध की एक-दो प्राचीन पाण्डुलिपियों में दिओ्रो युसिअस लागिनुस का विकल्प दिओ्रो युसिअस अथवा लागिनुस अंकित मिलता है। एक शंका ने दूसरी को जन्म दिया और पक्ष विपक्ष में अनेक प्रकार के तर्क वितर्क होने लगे। विपक्ष के दो प्रमुख तर्क थे—एक यह निबन्ध ईसा की पहली शताब्दी के किसी अज्ञात लेखक का है जो कदाचित् इसे प्रकाशित करने का इच्छुक नहीं था, कई एक शताब्दी बाद किसी परवर्ती भाषण शास्त्री ने अनुमान से दो प्रसिद्ध शास्त्रकारों—दिओ्रो युसिअस और लागिनुस—के नाम विकल्प रूप से टंकित कर दिए। दूसरे, लोंगिनुस का पूरा नाम, जो ईसा की तीसरी शती में पालम्यूरा की महारानी जेनोबिया का व्युत्पन्न मन्त्री था और जिसने पालम्यूरा के विप्लव के बाद अत्यन्त साहसपूर्वक वीरगति का वरण किया था, दिओ्रो युसिअस लागिनुस न होकर कस्सिअस लागिनुस

था। ग्रन्थ के अगरेज अनुवादक राबटस और एटकिन्स आदि विद्वान विपक्ष के ही अन्तगत आते हैं। पक्ष के तार्किकों ने भी इसका प्रत्युत्तर दिया और परम्परा का प्रमाण देते हुए इतिहास प्रसिद्ध लोगिनुस को ही प्रस्तुत निबन्ध का रचयिता सिद्ध किया। स्कॉट जेम्स ने अत्यन्त उच्छ्वसित शब्दों म परम्परा का समथन किया है इस विश्वास से इतिहास एक नई दीप्ति से जगमगा उठता है कि 'काव्य म उदात्त तत्त्व' का लेखक वही लागिनुस (लोजाइनस) था जिसने महारानी जेनोबिया की निष्ठा के साथ सेवा की थी। जब हम यह पता लगता है कि इस निबन्ध का रचयिता 'पालम्युरा का वीर' था तो हमारी दृष्टि म ग्रथ का मूल्य बढ जाता है, इसी प्रकार यह जान लेने के बाद कि प्रस्तुत निबन्ध के लेखक ने पालम्युरा नगर के रचना विधान मे योग दिया था, पालम्युरा का आकषण भी बढ जाता है।'[1]

सक्षेप मे, आलोच्य निबन्ध के रचनाकार और रचना-काल के विषय म पाश्चात्य आलोचकों के दो मत हैं—(१) इसका लेखक जेनोबिया का मन्त्री लोगिनुस (लोजाइनस) ही था जो अपनी वीरता और विदग्धता के लिए इतिहास मे प्रसिद्ध है, और इसकी रचना ईसा की तीसरी शताब्दी म हुई थी। (२) इसका रचयिता कोई अज्ञात यूनानी या रोमी-यूनानी लेखक था और इसकी रचना ईसा की पहली शताब्दी म हुई थी। प्राचीन साहित्यकारों के विषय मे इस प्रकार का विवाद कोई नई बात नही है—स्वदेश विदेश के अधिकाश प्राचीन कवियों और कलाकारों के विषय मे इस प्रकार का सन्देह बना हुआ है। इसमे सन्देह नही कि विपक्ष का मत भी अपुष्ट नही है, फिर भी सभी तर्कों का सम्यक विश्लेषण करने के पश्चात हमारा झुकाव परम्परा के पक्ष मे ही है। जब तक कोई अकाट्य प्रमाण न मिल जाए तब तक स्वीकृत परम्परा की मान्यता का निषेध नही किया जा सकता और प्रस्तुत परम्परा को तो युग युग के प्रसिद्ध विद्वानों—बुअलो, पोप, एडीसन आदि—का बल प्राप्त है।

निबन्ध का प्रतिपाद्य—

निबन्ध की उपलब्ध प्रति स्पष्टत खण्डित है—उसका लगभग ⅓ भाग अप्राप्य है। इसका प्रतिपाद्य विषय, जसाकि इसके अगरेजी शीषक से भ्रम हो जाता है काव्यगत उदात्त भावना का विश्लेषण नही है। भारतीय काव्यशास्त्र की शब्दावली म यह शुद्ध रसशास्त्र का ग्रन्थ न होकर काव्यशास्त्र का ही ग्रन्थ है अर्थात

१ दि मेकिंग आफ लिटरेचर, पृष्ठ ८०।

इसमे उदात्त कला की प्रेरक भावनाओ और धारणाओ का विश्लेषण नही वरन उदात्त शैली के आधार-तत्त्वो का विवेचन प्रधान है। उदात्त के आध्यात्मिक उद-गम की यहा उपेक्षा नही की गई, परन्तु मूल विवेच्य "अभिव्यक्ति की विशिष्टता और उत्कृष्टता" ही है—"उदात्त की कला' का और स्पष्ट शब्दो म 'इस बात का विवेचन कि हम अपनी स्वाभाविक क्षमता को औदात्य के किसी निश्चित स्तर तक किस प्रकार उन्नमित कर सकते है प्रस्तुत निबन्ध का मुख्य विषय है। इसका अभिप्राय यह नही कि लेखक उदात्त के आध्यात्मिक पक्ष को वाछित महत्त्व नही देता—वास्तव मे आत्मा के उत्कर्ष और 'उद्दाम प्रेरणा प्रसूत आवेग' को वह उदात्त का प्राण-तत्त्व मानता है, परन्तु वह प्रस्तुत निबन्ध का मूल प्रतिपाद्य नही है। इस विषय पर तो एक स्वतन्त्र निबन्ध[१] लिखने का दायित्व उसने लिया था, जो कदाचित पूरा नही हुआ।

स्थूल रूप से लेखक के प्रतिपाद्य को दो भागो म विभक्त किया जा सकता है—(१) विशेष सिद्धान्त—अर्थात 'उदात्त (शैली) का विवेचन, (२) सामान्य सिद्धान्त—अर्थात कला के आधारभूत सिद्धान्तो का विवेचन जसे कला और प्रकृति, शिल्पिक परिशुद्धता और प्रतिभा कला और नैतिकता आदि। इनमे पहला भाग ही मुख्य है और लेखक ने विस्तृत एव व्यवस्थित रूप स उसके अन्तर्गत अपने प्रतिपाद्य का विवेचन विश्लेषण किया है। दूसरा भाग—अधिक मूल्यवान होते हुए भी—निबन्ध की योजना म गौण ही है। इसमे सदेह नहीं कि इसके अन्तर्गत लेखक ने कला के आधारभूत सिद्धान्तो पर अत्यन्त गम्भीर एव मौलिक विचार व्यक्त किए हैं जिनका महत्त्व सार्वभौम और चिरन्तन है, फिर भी प्रस्तुत निबन्ध म यह विवेचन प्रासगिक रूप म ही हुआ है, आधिकारिक रूप मे नही।

---

१ काव्य में उदात्त तत्त्व, पृ० ४८।

उदात्त का स्वरूप

लोंगिनुस ने उदात्त की परिभाषा नहीं की—उसे एक स्वत स्पष्ट तथ्य मान कर छोड दिया है। उनका मुख्य प्रतिपाद्य यद्यपि उदात्त शैली के तत्त्वों अर्थात उदात्त के बहिरग तत्त्वो का[1] विवेचन ही रहा है, परन्तु उसके आध्यात्मिक पक्ष की पूर्ण उपेक्षा नहीं की गई। उनकी निरूपण विधि व्यावहारिक होते हुए भी मनोविज्ञान पर आश्रित रही है। अतएव उसमे उदात्त के अतरग तत्त्वों के भी मौलिक सकेत स्वभावत उपलब्ध हो जाते हैं। उदात्त का यह स्वरूप विवेचन स्थूलत तीन भागों मे विभक्त किया जा सकता है—(१) अन्तरग तत्त्व, (२) बहिरग तत्त्व और (३) विरोधी तत्त्व। इनमे यद्यपि लेखक का ध्यान दूसरे विषय पर ही केन्द्रित रहा है फिर भी पहले और तीसरे विषयो का भी अपना महत्त्व है—उनके बिना लेखक का प्रतिपाद्य इतना स्पष्ट न होता।

अतरग तत्त्व—

लांगिनुस ने औदात्य के पांच उद्गम-स्रोतो का निर्देश किया है जिनमे दो जन्मजात या अन्तरग हैं और शेष तीन कलागत इन पाचो मे प्रथम और सब प्रमुख है महान धारणाओ की क्षमता × × ×। दूसरा है उद्दाम और प्रेरणा प्रसूत आवेग। औदात्य के ये दो अवयव लगभग जन्मजात होते हैं।[2] अर्थात इन दोनों तत्त्वो का सम्बन्ध आत्मा की गरिमा से है इसलिए इस विषय मे भी × × × यथासम्भव हमे अपनी आत्मा मे उदात्त विचारो का पोषण करना चाहिए और उसे भव्य प्रेरणाओ से परिपूरित रखना चाहिए। तुम पूछोगे यह किस प्रकार किया जा सकता है? एक और स्थान पर मैंने लिखा है—औदात्य महान आत्मा की प्रतिध्वनि है।'[3] इस प्रकार उदात्त के दो अतरग तत्त्व हैं उदात्त विचार और

---

१ इस विषय में कोई लम्बी-चौडी भूमिका बाधने की आवश्यकता नहीं रह जाती कि औदात्य अभिव्यक्ति की विशिष्टता और उत्कृष्टता का नाम है। काव्य में उदात्त तत्त्व पृष्ठ ४४।

२ काव्य में उदात्त तत्त्व, पृ० ५३।

३ वही, पृष्ठ ५५।

प्रेरणा प्रसूत आवेग और इन दोनो म भी मुख्य है आवेग— 'मैं यह बात पूरे विश्वास के साथ कह सकता ‖ कि जो आवेग उ मद उत्साह के उद्दाम वेग से फूट पडता है और एक प्रकार से वक्ता के शब्दा को विभय से परिपूर्ण कर देता है, उसके यथा स्थान व्यक्त होने से स्वर मे जसा औदात्त्य आता है, वह अ यत्र दुलभ है।"[1]

आवेग की भी कोटिया होती हैं। लागिनुस ने केवल प्रेरणा प्रसूत भव्य आवेग को ही औदात्त्य का उद्गम माना है। आवेग के सभी रूप उदात्त नही होते और स्वभावत वे उदात्त कला की सष्टि नही कर सकत। अत औदात्त्य और आवेग को पर्याय मानना भूल होगी। भव्य आवेग से अभिप्राय ऐसे आवेग का है जिससे 'हमारी आत्मा जस अपने आप ही ऊपर उठकर गव से उच्चाकाश म विचरण करने लगती है तथा हप और उल्लास से परिपूण हो उठती है।[2] इसी प्रकार का आवेग उदात्त की सृष्टि करता है। इसके विपरीत कुछ' ऐसे भी आवेग होत हैं जो औदात्त्य से बहुत दूर हैं और जो निम्नतर कोटि के हैं जस दया, शोक, भय आदि।[3] कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार के भाव उदात्त की सष्टि म सवथा असमथ ही नही वरन् बाधक भी होत हैं। लागिनुस का दढ विश्वास है कि "सच्चे वाग्मी (कलाकार) को निश्चय ही क्षुद्र और हीनतर भावा से मुक्त होना चाहिए क्योंकि यह सम्भव नही है कि जीवन भर क्षुद्र उद्देश्यो और विचारो म ग्रस्त व्यक्ति कोई स्तुत्य एव अमर रचना कर सके।" "महान शब्द उ हीके मुख से नि सत होते हैं जिनके विचार गम्भीर और गहन हो।'[4]

एक दूसरे प्रकार से भी लेखक ने उदात्त के आतरिक स्वरूप की व्याख्या की है और वह है प्रभाव-वणन द्वारा

किन्तु उदात्त का प्रभाव अत्य त प्रबल और दुर्निवार होता है।'[5]

'वास्तव म महान रचना वही है × × × जिससे प्रभावित न होना कठिन ही नही लगभग असम्भव हो जाए और जिसकी स्मति इतनी प्रबल और गहरी हो कि मिटाए न मिटे।'[6]

साधारणत औदात्त्य के उन उदाहरणो को ही श्रेष्ठ और सच्चा मानना चाहिए जो सब व्यक्तियो को सवदा आन द दे सकें।

"वज्रपात का बिना पलक झपाए सामना करना तो आसान है, कि तु एक के बाद एक तीव्र गति से होनेवाले उस भाव विस्फोट को अविचल दष्टि से देखना सम्भव नही।'[7]

'यही कारण है कि सम्पूण विश्व भी मानव मस्तिष्क के विचार और चिंतन

१ काव्य में उदात्त तत्त्व, पृष्ठ ५४। २ वही, पृष्ठ ५२। ३ वही, पृष्ठ ५४। ४ वही, पृष्ठ ५५। ५ वही पृष्ठ ४४। ६ वही, पृष्ठ ५२। ७ वही, पृष्ठ ६६।

के लिए पर्याप्त नहीं लगता और प्राय हमारी कल्पना दिगन्त को पार कर जाती है।'[1]

"यही कारण है कि स्वभाव से ही हम छोटी-छोटी धाराओं की प्रशंसा नहीं करते, चाहे वे कितनी ही उपयोगी और निर्मल क्यों न हों बल्कि नील नदी, डन्यूब अथवा राइन और इन सबसे अधिक महासागर से प्रभावित होते हैं। इसी प्रकार हम अपने द्वारा प्रज्वलित छोटी-सी अग्निशिखा को (यद्यपि उसके प्रकाश की पवित्रता चिरकाल से यथावत् सुरक्षित है) स्वर्गिक ज्वालाओं की अपेक्षा अधिक सम्भ्रम से नहीं देखते यद्यपि वे प्राय अन्धकार में छिपी रहती हैं न हम उसे एतना के ज्वालामुखियों की अपेक्षा अधिक विस्मयकारी मानते हैं जो अपने विस्फोट में अतल गर्त से बड़े-बड़े पत्थर एवं बृहदाकार शिलाखण्ड बाहर फेंकते रहते हैं और कभी-कभी जिनके गर्भ से विशुद्ध और अमिश्रित अग्नि की ज्वाला का नद प्रवाह उमड़ता चला आता है। इन सब विषयों में हम यह कह सकते हैं कि जो कुछ भी उपयोगी तथा आवश्यक है उसे मनुष्य साधारण मानता है अपने सम्भ्रम का भाव तो वह उन पदार्थों के लिए ही सुरक्षित रखता है जो विस्मय विमूढ कर देनेवाले है।[2]

"और सभी गुण जहा यह सिद्ध करते हैं कि उनको धारण करनेवाले मनुष्य हैं वहा औदात्य लेखक को ईश्वर के समीप ले आता है जहा दोषमुक्त होने पर आलोचनाओं से छुटकारा मिलता है वहा गरिमा आदर और विस्मय को जन्म देती है।'[3]

विवेचन

भारतीय काव्यशास्त्र की शब्दावली में उपर्युक्त उद्धरणों में उदात्त के विभाव और भाव दोनों पक्षों का वर्णन है। विभाव से अभिप्राय भाव के कारण का है और भाव का अर्थ है अनुभूति। इन वाक्यों में उदात्त भावना को जन्म देनेवाले कारणों--अर्थात् उसके आलम्बन पक्ष का और उदात्त भावना के अनुभूति पक्ष का विवेचन मिलता है।

विभाव पक्ष

विभाव आलम्बन रूप में उदात्त के तत्त्व हैं---

(१) अनन्त विस्तार---[(क) 'सम्पूर्ण विश्व भी × × × पर्याप्त नहीं लगता और प्राय हमारी कल्पना दिगन्त को पार कर जाती है।" (ख) 'बल्कि

१ काव्य में उदात्त तत्त्व, पृष्ठ १००। २ वही, पृष्ठ १००–१।
३ वही, पृष्ठ १०१।

नील नदी, डेन्यूब और इन सबसे अधिक महासागर से प्रभावित होते हैं।']

(२) असाधारण शक्ति और वेग—["न हम उसे ऐतना के ज्वालामुखियों की अपेक्षा अधिक विस्मयकारी मानते हैं जो अपने विस्फोट में अतल गर्भ से बड़े बड़े पत्थर एवं बृहदाकार शिलाखण्ड बाहर फेंकते रहते हैं और कभी कभी जिनके गर्भ से विशुद्ध और आग्नेयी में ज्वाला का नद प्रवाह उमड़ता चला आता है।"]

(३) अलौकिक ऐश्वर्य—["और सभी गुण जहाँ यह सिद्ध करते हैं कि उनको धारण करनेवाले मनुष्य हैं वहाँ औदात्य लेखक को ईश्वर के (ऐश्वर्य के) समीप ले आता है।]

(४) उत्कट एवं स्थायी प्रभाव क्षमता—[(क) 'वज्रपात का बिना पलक झपाए सामना करना तो आसान है किन्तु एक के बाद एक तीव्र गति से होनेवाले उस भाव विस्फोट को अविचल गति से देखना सम्भव नहीं। (ख) 'जिससे प्रभावित न होना कठिन ही नहीं लगभग असम्भव हो जाए और जिसकी स्मृति इतनी प्रबल और गहरी हो कि मिटाए न मिटे।]

संक्षेप में, स्वयं लोंगिनुस के ही शब्दों में उदात्त आलम्बन के गुण हैं "जीवन्त आवेग, प्रचुरता, तत्परता, जहाँ उपयुक्त हो वहाँ गति तथा ऐसी शक्ति और वेग जिसकी समता करना सम्भव नहीं।"

भाव पक्ष

उदात्त की अनुभूति के अन्तस्तत्त्व इस प्रकार हैं—

(१) मन की ऊर्जा—अर्थात आत्मा का उत्कर्ष करनेवाली प्रबल अनुभूति। लोंगिनुस ने दो प्रकार के आवेगों की ओर संकेत किया है, एक—उत्साह आदि *जिनसे आत्मा का उत्कर्ष होता है* और दो—भय शोक आदि हीनतर आवेग जो आत्मा का अपकर्ष करते हैं। उदात्त की अनुभूति पहली कोटि में आती है ('जिससे हमारी आत्मा जैसे अपने आप ही ऊपर उठकर गर्व से उच्चाकाश में विचरण करने लगती है।')—भारतीय काव्यशास्त्र में जिसे चित्त की 'दीप्ति' या 'स्फीति' कहा है।

(२) उल्लास—[(क) "तथा (जिससे हमारी आत्मा) हर्ष और उल्लास से परिपूर्ण हो जाती है। (ख) "साधारणतः औदात्त्य के उन उदाहरणों को ही श्रेष्ठ और सच्चा मानना चाहिए जो सब व्यक्तियों को सर्वदा आनन्द दे सकें।]

(३) सम्भ्रम अर्थात आदर और विस्मय—[(क) 'जो कुछ भी उपयोगी तथा आवश्यक है उसे मनुष्य साधारण मानता है, अपने सम्भ्रम का भाव तो वह उन पदार्थों के लिए ही सुरक्षित रखता है जो विस्मय विमूढ़ कर देनेवाले हैं।' (ख) '× × वहाँ गरिमा आदर और विस्मय को जन्म देती है।']

(४) अभिभूति अर्थात सम्पूर्ण चेतना के अभिभूत हो जाने की अनुभूति— उदात्त की अनुभूति का अन्तिम रूप यही है ऊर्जा, उल्लास, और सम्भ्रम आदि के सम्मिलित प्रभाव रूप अन्तत हमारी सम्पूर्ण चेतना अभिभूत हो जाती है। लोगिनुस ने 'विस्मय विमूढ शब्द' के द्वारा इसी भाव को व्यक्त किया है।

बहिरग तत्त्व—

जसाकि हमने प्रारम्भ म ही निवेदन किया है लोगिनुस के निबन्ध का मुख्य प्रतिपाद्य उदात्त शली ही है—अर्थात उनका ध्यान मूलत उन तत्त्वो पर ही केन्द्रित रहा है जिनके द्वारा काव्य की शली उदात्त बनती है। स्पष्टत ये उदात्त के बहिरग तत्त्व हैं, स्वय लेखक के शब्दा मे य 'कला की उपज हैं।'[१] इस प्रकार कलागत या बहिरग तत्त्व तीन हैं एक—अलकारो की समुचित योजना जिसके अतगत भाव और अभिव्यक्ति दोनो ही से सम्बन्धित अलकार आ जाते हैं। दो—उत्कृष्ट भाषा जिसके अन्तगत शब्द चयन, रूपकादि का प्रयोग और भाषा की सज्जा-समृद्धि आदि गुण आ जाते हैं। तीन—गरिमामय एव ऊर्जित रचना विधान।[२] लोगिनुस ने विस्तार से इन तीनो तत्त्वा को लकर अपने विचार प्रकट किए हैं।

समुचित अलकार-योजना

इस प्रसग मे लेखक ने दो तथ्यो को ग्रहण किया है एक अलकार विधान का औचित्य और दूसरा उदात्त के पोषक अलकारो का निर्देश। अपनी मूल धारणा के अनुरूप ही लोगिनुस अलकार विधान म औचित्य को प्राथमिकता देते है, उदात्त शली के निर्माण मे अलकारो का प्रयोग तो आवश्यक होता ही है, किन्तु उससे भी अधिक आवश्यक होता है—अलकार प्रयोग का औचित्य, जो स्थान, ढग, परिस्थिति और उद्देश्य के ऊपर निभर रहता है। अर्थात भव्य से भव्य अलकार भी उसी स्थिति म उदात्त का पोषक हो सकता है जब उसका प्रयाग स्थान, परिस्थिति, रीति और उद्देश्य के अनुकूल हो। किसी अलकार का प्रयोग स्वतन्त्र और निरपेक्ष नहीं हो सकता क्योकि वह तो साधन मात्र है। वास्तव मे अलकार प्रयोग की सार्थकता तो तब है जब वह प्रसग का सहज अग बनकर आए और 'इस बात पर भी किसीका *ध्यान न जाए कि यह अलकार है।*'[३] *स्पष्टत कला की यही सबस बडी सिद्धि* है कि उसके प्रयोग के विषय मे प्रमाता का सन्देह तक न हो—परवर्ती आलोचना शास्त्र म इसे ही कला का आत्मगोपन कहा गया है। जब अलकारा का प्रयोग स्वतन्त्र रूप म होने लगता है अर्थात जब वे साध्य बन जाते हैं तो उनका उद्देश्य

१ काव्य में उदात्त तत्त्व पृष्ठ ५३।
२ वही, पृष्ठ ५३। ३ वही, पृष्ठ ७७।

ही विफल हो जाता है, इसीलिए लोंगिनुस अलंकार प्रयोग के लिए यह आवश्यक मानते हैं कि वह साधन रूप हो, प्रसंगानुकूल हो, अतिचार से मुक्त हो और अयत्नज हो—कम से कम अयत्नज प्रतीत हो क्योंकि कला प्रकृति के समान प्रतीत होने पर ही सम्पूर्ण होती है।'[१]

उदात्त के पोषक अलंकारों में रूपक के अतिरिक्त लोंगिनुस ने विस्तारणा, शपथोक्ति (संबोधन), प्रश्नालंकार विपर्यय व्यतिक्रम, पुनरावृत्ति, छिन्नवाक्य प्रत्यक्षीकरण, सचयन, सार, रूप-परिवर्तन पर्यायोक्ति आदि का मनोवैज्ञानिक पद्धति से विवेचन किया है। १ विस्तारणा के तत्त्व हैं विवरण और प्राचुर्य। "विस्तारणा किसी विषय के समस्त अंगों और अंगभूत प्रसंगों के समुदाय का नाम है, जिससे विषय के विस्तार द्वारा युक्ति में बल आता है।'[२] यह अलंकार घटनाओं अथवा युक्तियों को प्रबलता से प्रस्तुत कर सघनता की सृष्टि करता हुआ उदात्त शैली के निर्माण में योगदान करता है। २ शपथोक्ति अलंकार—जिसके लिए लोंगिनुस सम्बोधन नाम को अधिक उपयुक्त मानते हैं—शपथों के द्वारा ओज और विश्वास की सृष्टि करता है। (पृष्ठ ७४)। ३ प्रश्नालंकार में प्रश्नोत्तर की सस्वर परम्परा के द्वारा वक्ता स्वयं ही प्रश्न कर उनका समाधान प्रस्तुत करता है और इस प्रकार उसका वक्तव्य अधिक उग्र और विश्वासोत्पादक बन जाता है। इस अलंकार में प्रश्न उठाकर अपने आप ही उनका उत्तर दे देने से भावावेग का स्फोट स्वाभाविक जान पड़ता है। (पृष्ठ ७८) ४ विपर्यय और ५ व्यतिक्रम में शब्दों अथवा विचारों के सहज क्रम में उलट फेर कर दिया जाता है (पृष्ठ ८१)। जिस प्रकार मनुष्य वास्तव में क्रोध, भय, मन्यु, ईर्ष्या अथवा किसी अन्य भावना से (क्योंकि आवेग अनेक और असंख्य हैं और उनकी गणना सम्भव नहीं) उत्तेजित होकर कभी-कभी दूसरी ओर मुंह फेर लेते हैं अपने मुख्य विषय को छोड़कर दूसरे पर लपक उठते हैं और बीच ही में कोई सर्वथा असम्बद्ध बात ले आते हैं, फिर उसी प्रकार अचानक ही तेजी से घूमकर अपने मुख्य विषय पर लौट आते हैं और वातचक्र की भांति अपने ही वेग से परिचालित होकर जल्दी जल्दी इधर उधर बहकते वे अपनी शब्दावली का, विचारों को और उनके सहज क्रम को नाना प्रकार के असंख्य रूपों में बदलते रहते हैं, उसी प्रकार श्रेष्ठ लेखक विपर्यय के द्वारा इस सहज प्रभाव को यथासम्भव अभिव्यक्त करते हैं।

(पृ० ८२)

६ पुनरावृत्ति और ७ छिन्नवाक्य का उद्देश्य भी बहुत कुछ इसी प्रकार का

---

१ काव्य में उदात्त तत्त्व, पृष्ठ ८२। २ वही पृष्ठ ६५।

होता है। आत्मा के आवेग और सक्षोभ को व्यक्त करने के लिए इनका महत्त्व असंदिग्ध है क्योंकि इस प्रकार की मनोदशा में अनुक्रम स्वत ही छिन्न भिन्न हो जाता है, मयोजक पदावली की कडियां टूट जाती हैं और प्रयोक्ता अनायास ही छिन्नवाक्यों और पुनरावृत्तियों का सहारा लेने लगता है। (पृ० ८०) ८ प्रत्यक्षीकरण म साक्षात वर्णन की क्षमता रहती है—समस्त वर्ण्य विषय जीवन्त-सा हो उठता है। इस अलंकार का प्रयोग प्राय पुनरावृत्ति और छिन्नवाक्य आदि के सहयोग म ही होता है। ९ आवेग की अभिव्यक्ति के अन्य सफल उपकरण हैं—सचयन, सार और रूप-परिवर्तन। सचयन[१] म अनेक तथ्यों का ढेर-सा लग जाता है और १० सार[२] म वर्ण्य-वस्तु की उत्तरोत्तर वृद्धि की अभिव्यंजना रहती है। ११ रूप-परिवर्तन[३] पर लोंगिनुस ने विस्तारपूर्वक लिखा है—यह अलंकार वचन, काल, पुरुष, कारक और लिंग के परिवर्तन द्वारा विषय के प्रतिपादन म विविधता और सजीवता उत्पन्न करता है। वचन-परिवर्तन के अन्तर्गत एकवचन के लिए बहुवचन के प्रयोग और बहुवचन के लिए एकवचन के प्रयोग की व्यवस्था है। इसी प्रकार काल-परिवर्तन मे भूत और भविष्यत के स्थान पर वर्तमान और वर्तमान के स्थान पर भूत और भविष्यत का प्रयोग रहता है आगे चलकर 'ऐतिहासिक वर्तमान' आदि के रूप म इसीका विकास हुआ।[४] पुरुष-परिवर्तन म अन्यपुरुष के लिए प्राय मध्यमपुरुष के प्रयोग द्वारा (अथवा अन्य प्रकार के विपर्यय द्वारा) 'प्रत्यक्ष प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। —"कभी-कभी ऐसा भी होता है कि लेखक किसी अन्य व्यक्ति के बारे म बात करते-करते एकाएक बात को काटकर स्वय अपने आपको उस व्यक्ति का रूप दे देता है।' यही बात कारक और लिंग के परिवर्तन के विषय म कही जा सकती है। इन अलंकारो का प्रयोग ऐसे ही प्रसगो म करना चाहिए जहा विषय के अन्तर्गत विस्तारणा अतिरिक्त वर्णन अतिशयोक्ति अथवा भावावेग के लिए अवकाश हो। भारतीय काव्यशास्त्र म कुन्तक ने इस प्रकार के रूप परिवर्तनो का पद-पराध-वक्रता के अन्तर्गत अत्यन्त मार्मिक और व्यवस्थित विवेचन किया है। १२ पर्यायोक्ति मे बात को प्रकारान्तर से चमत्कार के साथ कहा जाता है जसे 'मरयु के लिए 'नियत मार्ग का प्रयोग आदि। लोंगिनुस का मत है कि पर्यायोक्ति का प्रयोग सयम के साथ विवेकपूर्वक करना चाहिए अन्यथा वह एकदम प्रभावशून्य हो जाती है और एक प्रकार का खोखलापन एव वाग्विस्तार शेष रह जाता है।[५]

इन अलंकारो के अतिरिक्त १३ रूपक और १४ अतिशयोक्ति का भी उदात्त

१ २, ३, काव्य में उदात्त तत्त्व, पृ० ८३।
४ वही, पृष्ठ ८५, ८६। ५ वही, पृष्ठ ६०।

शली के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योग रहता है। कुछ विद्वानों ने रूपकों की संख्या को दो-तीन तक ही सीमित करने की व्यवस्था दी है, परन्तु लांगिनुस उनसे सहमत नहीं हैं। रूपकों की शृंखला उदात्त आवेग प्रवाह का व्यक्त करने में प्राय अत्यंत सफल रहती है। किन्तु यहां भी प्रमाण विवेक ही है। अतिशयोक्ति के विषय में और भी सतर्कता की आवश्यकता है, क्योंकि उसका असयत प्रयोग उपहास्य बन जाता है। यह अतिशयोक्ति वास्तव में भारतीय काव्यशास्त्र में वर्णित 'ऊहा' के निकट है—इसकी सार्थकता तभी है जब प्रमाता को इसके अस्तित्व का संदेह तक न हो, जब अतिशय स्वाभाविक ही प्रतीत हो।

उदात्त की सृष्टि में सहायक प्राय ये ही अलकार हैं। ये अलकार पृथक् रूप से तो उपयोगी होते ही हैं—इनकी समष्टि की उपयोगिता और भी अधिक होती है क्योंकि विस्तार और प्राचुर्य की सृष्टि कर अनेक अलकारों का सम्मिलित प्रयोग उदात्त की सृष्टि में प्रत्यक्ष योगदान करता है।

उत्कृष्ट भाषा

उदात्त शैली का दूसरा प्रमुख तत्त्व है उत्कृष्ट भाषा। लांगिनुस ने विचार और पद विन्यास को एक-दूसरे में आश्रित माना है।[1] अतएव स्वभावत उदात्त का अभिव्यक्ति का माध्यम उत्कृष्ट या गरिमामयी भाषा ही हो सकती है। भाषा की गरिमा का मूल आधार है शब्द-सौन्दर्य जिसका अर्थ है 'उपयुक्त और प्रभावक' शब्द प्रयोग। 'सुन्दर शब्द ही वास्तव में विचार को विशेष प्रकार का आलोक प्रदान करते हैं।'[2] और उन्हीं के द्वारा "प्रत्यक्ष रूप में किसी रचना में सुन्दरतम मूर्तियों की भाँति भव्यता सौन्दर्य, मार्दव, गरिमा, ओज और शक्ति तथा अन्य श्रेष्ठ गुणों का आविर्भाव होता है और मृतप्राय वस्तुएं जीवन्त हो उठती हैं।"[3] किन्तु गरिमामयी भाषा का उपयोग सर्वत्र नहीं करना चाहिए, क्योंकि छोटी मोटी बातों को बड़ी-बड़ी और भारी भरकम संज्ञा देना किसी छोटे-से बालक के मुंह पर पूरे आकारवाला नाटक अभिनय का मुखौटा लगा देने के समान है।[4] अर्थात् गरिमामयी पदावली का उपयोग प्रसंग के अनुरूप ही होना चाहिए, क्योंकि वस्तु और शब्द के बीच पूर्ण सामंजस्य के बिना उदात्त की योजना सम्भव नहीं है।

गरिमामय एवं उर्जित रचना विधान

प्राचीन काव्यशास्त्र में रचना विधान का बड़ा महत्त्व रहा है। स्वयं लोंगिनुस ने अपने दो ग्रन्थों में, जो अप्राप्य हैं इस विषय का विस्तार से

---

१ काव्य में उदात्त तत्त्व, पृष्ठ ६०।

२ वही, पृष्ठ ६१। ३ वही, पृष्ठ ६१। ४ वही पृ० ६६।

विवेचन किया है। रचना का अर्थ है भाषा का सामजस्य। यह गुण स्वभावजात होता है और यह हमारी श्रवणेंद्रिय को ही नही वरन हमारी आत्मा तक को प्रभावित करता है। रचना विधान के अन्तगत शब्दो, विचारो कार्यों, सुदरता तथा राग के अनेक रूपो का सगुम्फन रहता है। अर्थात रचना का प्राण-तत्त्व है सामजस्य, जो उदात्त शली के निर्माण के लिए अनिवाय है। यह सामजस्य वक्ता और हमारे बीच समभाव की स्थापना करता है "हमे भव्यता, गरिमा ऊर्जा तथा अपने भीतर निहित प्रत्येक भाव की ओर प्रवत्त करता है और इस प्रकार हमारे मन के ऊपर पूण अधिकार प्राप्त कर लेता है।' शलीगत रचना विधान की स्थिति शरीर रचना क समान है। जिस प्रकार शरीर के अगो म अलग अलग रहने पर कोई विशेषता नही होती किन्तु सब मिलकर एक समग्र और सम्पूण शरीर की रचना करते हैं, इसी प्रकार उदात्त शली के तत्त्वो को यदि एक दूसरे से अलग कर दिया जाए तो उनके साथ औदात्य भी इधर उधर बिखर जाता है किन्तु जब उन सबको मिलाकर एकान्वित कर दिया जाता है और सामजस्य की एक शृखला म बाध दिया जाता है तो उनमे अपनी वतुलता के कारण एक प्रकार की 'गरिमा उत्पन्न हो जाती है।[१]

कल्पना तत्त्व

उदात्त शली के तत्त्वो के अन्तगत ही प्रासगिक रूप से लोगिनुस ने बिम्बो का वणन करते हुए उनकी निर्मात्री शक्ति कल्पना की ओर भी अप्रत्यक्ष किन्तु स्पष्ट सकेत किया है। उनका कथन है कि बिम्ब (या कल्पना चित्र) भी प्रवक्ता की गरिमा, ऊर्जा और शक्ति के सम्पादन म बहुत कुछ सहायता करते है।' बिम्ब को 'कुछ लोग मानसिक प्रतिकृति भी कहते है। इस मानसिक प्रतिकृति का निर्माण करनेवाली शक्ति का नाम ही कल्पना है। लागिनुस ने इसके सम्बन्ध म दो महत्त्वपूण वाक्य लिखे है

१ सामान्यत बिम्ब (अथवा कल्पना चित्र) की सना मन के प्रत्यक ऐस विचार को दी जाती है जो चाहे किसी रूप म भी प्रकट होनेपर वाणी को प्रस्फुरित करता है।

२ पर आजकल यह शब्द मुख्यत एसे अवसरो पर प्रयुक्त होता है जहा उत्साह और आवेग म आकर हम यह सोचते हैं कि जो कुछ हम वणन कर रहे हैं उसे साक्षात देख रहे है और अपन श्रोताओ के आगे भी प्रत्यक्ष कर रहे हैं। (पृ० ६६)।

---

१ काव्य में उदात्त तत्त्व, पृष्ठ १०७।

विपरीत रूप 'उपहास्य'[1] का विवेचन किया गया।

इसी प्रकार अभिव्यक्ति की क्षुद्रता अत्यधिक संक्षिप्तता, जड़ाव और संगीत तथा लय का आधिक्य भी उदात्त शैली के लिए घातक सिद्ध होते हैं। अभिव्यक्ति की क्षुद्रता का अर्थ है क्षुद्र अर्थ के वाचक शब्दों का प्रयोग। उदात्त विषय के अनुरूप उदात्त शैली में निकृष्ट और कुत्सित अर्थ के वाचक-शब्द 'भाषा पर कलंक-से प्रतीत होते हैं।' साथ ही उक्ति की अत्यधिक संक्षिप्तता से भी उदात्तता का ह्रास होता है। क्योंकि बहुत ही संकीर्ण घेरे में विचार को ठूसने से भी गरिमा नष्ट हो जाती है। "यह आरोप समास शैली के विषय में नहीं है जो कि शब्दों का गुण है," "वरन ऐसी उक्ति के विषय में है जो सर्वथा क्षुद्र और छोटे छोटे भागों में खण्डित हो क्योंकि शब्दों की अल्पता अर्थ को संकुचित कर देती है।[2] यही बात जड़ाव के विषय में है। 'ऐसे शब्द जो एक दूसरे से बहुत सटे हुए हों छोटे छोटे अक्षरों में विभक्त हों और नितान्त विषमता तथा कर्कशता के द्वारा मानो लकड़ी की कीलों से एक दूसरे के साथ जड़े हों'[3] उदात्त शैली के दूषण होते हैं। और अंत में, लय एवं संगीत का आधिक्य भी उदात्त के प्रभाव को नष्ट कर देता है इनके कारण उक्ति में एक प्रकार की अतिशय सुकुमारता, कृत्रिमता और एकरसता उत्पन्न हो जाती है और श्रोता का ध्यान विषय वस्तु से हटकर लय और संगीत पर केन्द्रित हो जाता है।[4]

विवेचन

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर उदात्त के विषय में लांगिनुस के मत का सारांश यह है

विभाव रूप में उदात्त से अभिप्राय ऐसे विषय का है जो अनन्त विस्तार, असाधारण शक्ति एवं वेग, अलौकिक ऐश्वर्य तथा उत्कट प्रभाव क्षमता आदि गुणों से सम्पन्न हो।

भाव रूप में उदात्त से तात्पर्य उल्लास, विस्मय सम्भ्रम आदि संचारियों से पुष्ट, आत्मा का उत्कर्ष करनेवाली ऐसी प्रबल अनुभूति का है जो सम्पूर्ण चेतना को अभिभूत कर ले।

शैली के रूप में उदात्त के आधार तत्त्व हैं—उपयुक्त एवं प्रभावक शब्दों से युक्त उत्कृष्ट भाषा, गरिमामय रचना विधान, भव्य योजना और प्रायः अतिशय

---

१ लुडिक्रम।
२ ३, ४ काव्य में उदात्त तत्त्व, पृ० १०६।

मूलक अलंकारों की योजना जिनपर औचित्य का अनुशासन अनिवार्यतः रहना चाहिए।

यूरोप के सौंदर्यशास्त्र में और काव्यशास्त्र में भी उदात्त के विभाव और भाव दोनों पक्षों का विशेष महत्त्व रहा है। उसके भाव-विभाव पक्ष का बर्क ने और आधुनिक युग में आकर ब्रैडले आदि ने अत्यन्त मनोयोगपूर्वक विवेचन-विश्लेषण किया है और शुद्ध भाव-पक्ष का उद्घाटन कांट आदि ने। ब्रैडले ने अपने प्रसिद्ध निबन्ध[1] में विभाव-रूप में 'असीम शक्ति' को उदात्त का मूल तत्त्व माना है। विराट आकार या असीम विस्तार अनुप बल आदि भी सामान्यतः उदात्त के साथ सम्बद्ध हैं—किन्तु एक तो वे अनिवार्य नहीं हैं दूसरे उनका अन्तर्भाव भी 'असीम शक्ति' में ही हो जाता है क्योंकि वे सभी शक्ति के ही व्यक्त रूप हैं। उदात्त को सौंदर्यशास्त्र का शब्द मानते हुए इन्होंने उसे व्यापक अर्थ में सौंदर्य का ही एक रूप माना है। व्यापक सुन्दर के पांच भेद किए जा सकते हैं उदात्त भव्य 'सुन्दर' मनोरम (सुष्ठु) और ललित।[2] इनमें से एक कोटि में उदात्त और अपर कोटि में ललित। सीमित अर्थ में प्रयुक्त 'सुन्दर' की स्थिति मध्यवर्ती है। भारतीय काव्यशास्त्र की शब्दावली की सहायता से यों कहा जा सकता है कि सुन्दर की स्थिति वस्तुतः प्रसाद गुण की सी है। जिस प्रकार प्रसाद की स्थिति ओज और माधुर्य में आधार-रूप से विद्यमान रहती है, इसी प्रकार 'सुन्दर' का तत्त्व भी एक ओर उदात्त और भव्य में और दूसरी ओर मनोरम तथा ललित में मूलतः विद्यमान रहता है। ओज और माधुर्य के स्तरानुसार समावेश से 'सुन्दर' एक ओर क्रमशः भव्य और उदात्त का और दूसरी ओर मनोरम एवं ललित का रूप धारण कर लेता है।—भावपक्ष में उदात्त की अनुभूति चित्त के उन्नयन और विस्तार के रूप में होती है। 'सुन्दर' और उसके अन्य सहवर्ती वर्गों की अनुभूति 'प्रीति' के रूप में होती है अर्थात् इस स्थिति में आलम्बन और प्रमाता के चित्त के बीच एक सुखद सामञ्जस्य स्थापित हो जाता है। परन्तु ओज से समन्वित भव्य रूप की अनुभूति में प्रमाता के चित्त पर एक आघात-सा लगता है और जब इस आघात के बाद उसकी सीमा का विस्तार होने लगता है। उदात्त का आघात और भी प्रबल होता है और इसके फलस्वरूप चित्त का विस्तार भी इसी अनुपात में अधिक होता है। 'सुन्दर' आदि की अनुभूति में आलम्बन प्रमाता के चित्त के साथ एकाकार हो जाता है और उदात्त की अनुभूति में आलम्बन प्रमाता के चित्त का स्वीकार कर लेता है। अतएव उदात्त की अनुभूति में एक प्रकार का आत्मसंघर्ष—अभिभूति—अनिवार्य होता है उसमें

१ ऑक्सफ़ोर्ड लेक्चर्स ऑन पोएट्री, निबन्ध संख्या २।
२ [illegible] ब्यूटिफुल, [illegible]।

प्रीति नही, उल्लास का भाव रहता है जिसम सम्भ्रम अर्थात विस्मय और आदर, यहा तक कि एक प्रकार का भय भी, विद्यमान रहता ह।[1]

ब्रैडले के इस विवेचन म एक प्रकार से उदात्त विषयक आधुनिक धारणाओ का साराश निहित है। जहा तक उदात्त के भाव विभाव पक्ष का सम्बन्ध है, ये धारणाए *लोगिनुस की धारणाओ से मूलत भिन्न नही हैं। विभाव पक्ष के अनन्त* विस्तार, असाधारण शक्ति और वस्तु अलौकिक ऐश्वय और उत्कट प्रभाव-क्षमता आदि जिन गुणो का वणन लागिनुस न किया है, ब्रडले ने भी थोडे-बहुत शब्द भेद से उन्हें स्वीकार करते हुए 'असीम शक्ति के रूप मे उन्ह एकत्र कर दिया है। इसी प्रकार भाव पक्ष के अतगत भी ब्रडले ने लागिनुस का भाष्य मात्र कर दिया है।

पश्चिम के रीतिकारो ने काव्यगत भाव के स्थूलत चार भेद किए हैं उदात्त, सुदर करुण और हास्य। इनमे सुन्दर का प्रयोग ब्रडले द्वारा परिभाषित सीमित अथ म ही हुआ है और उसी रूप म वह उदात्त से भिन्न है। करुण और हास्य उदात्त के विपरीत रूप है क्याकि करुण से चित्त का सकोच और आत्मा का अपकष होता है और हास्य के मूल मे क्षुद्रता एव विकृति रहती है। लोगिनुस ने इन चार भेदो का पथक रूप से कथन नही किया किन्तु इनके सकेत अवश्य ही मिल जाते ह क्योंकि उदात्त के विरोधी तत्त्वा म इनका स्पष्ट उल्लेख है, जस 'शाक और दया' को जो करुण के आधार-तत्त्व हैं उन्होने उदात्त का विरोधी माना है और बालेय' तथा क्षुद्र' वस्तुत हास्यास्पद से बहुत भिन्न नही है।[2] एकाध स्थान पर ऐसा भ्रम होता है कि कदाचित लागिनुस की उदात्त भावना का परिधि *अधिक व्यापक है—यथा उन्होने सफो जसी प्रगीत-कवयित्री के प्रेमोदगार को भी* उदात्त के उदाहरण रूप मे प्रस्तुत किया है। यहा यह प्रश्न किया जा सकता है कि प्रेमोदगार तो आधुनिक धारणा के अनुसार सुदर या करुण के अन्तगत आएगा न कि 'उदात्त के। किन्तु प्रमावेग के इस उदगार म सौन्दय या माधुय की अपेक्षा वेग और शक्ति का ही आतिशय्य है और किसी भी भाव के आवेश, वेग एव शक्ति को माधुय या कारुण्य की अपेक्षा औदात्य के अन्तगत ही मानना उचित होगा। ब्रडले की परिभाषा के अनुसार भी इस उदाहरण को आवेग की अपार शक्ति के विस्फोट के कारण उदात्त के अन्तगत मानने म कोई आपत्ति नही होनी चाहिए। यहा प्रेम की मदाकिनी का सरस प्रसन्न प्रवाह न होकर आवेग का ज्वार है और इस ज्वार म आत्मा का उत्कष एव विस्तार है सकोच नही है—अत सुदर या

१ ऑक्सफोर्ड लेक्चस ऑन पोइट्री पृ० ३८ और ५२।
२ काव्य में उदात्त तत्त्व, पृ० ४३ ५४ और ४७।

'करण' की अपेक्षा यहा उदात्त की स्थिति मानना अनुचित नही होगा।

शलीगत औदात्य या 'उदात्त की कला का विवेचन लोगिनुस ने अधिक विस्तार के साथ किया है और उसीके आधार पर कदाचित् ऐटकिन्स ने उनकी तत्सम्बन्धी धारणा को प्रचलित धारणा भिन्न तथा अधिक व्यापक माना है। इसमे सन्देह नही कि लोगिनुस ने इस पक्ष को अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व दिया है, किन्तु परवर्ती आलोचनाशास्त्र म भी इसकी उपेक्षा नही की गई। शली के अनेक भेदो मे उदात्त शली का अपना गौरव रहा है, मिल्टन की शली तो विशेष से सामान्य रूप धारण कर उदात्त शली का पर्याय ही बन गई है। वास्तव म उदात्त विषय और उदात्त भावना की अभिव्यक्ति की माध्यम उदात्त शली की प्रकल्पना स्वाभाविक ही थी और परवर्ती आलोचनाशास्त्र मे उसका विवेचन प्राय लोगिनुस के ही आधार पर किया गया है। जसाकि मैंने अभी स्पष्ट किया है, लोगिनुस ने उदात्त शली के तीन चार प्रमुख तत्त्व माने हैं उपयुक्त एव प्रभावक शब्दो से युक्त उत्कृष्ट भाषा, गरिमामय रचना विधान, भव्य बिम्ब-योजना और प्राय अतिशयमूलक अलकारो की योजना—और इन सबके लिए औचित्य का अनुशासन अनिवार्य माना है। इनम स कोई भी तत्त्व या उसका अग ऐसा नहीं है जो वतमान मान्यताओ के विरुद्ध या उनसे भिन्न हो। उपयुक्तता और औचित्य के अनिवार्य महत्त्व के कारण पहले कुछ शका होनी तो है किन्तु बाद मे विचार करने पर उसका समाधान हो जाता है क्योकि आखिर औचित्य और उपयुक्तता का तिरस्कार तो किसी भी उत्कृष्ट काव्य शली म सम्भव नही। इनके अभाव मे तो, जसाकि स्वय लेखक ने उदाहरण देकर विस्तार से समझाया है, उदात्त उपहास्य होकर रह जाता है। औचित्य और उपयुक्तता का प्रयोग लेखक ने रूढि के रूप म नही किया—औचित्य से यहा शली और परिस्थिति, उद्देश्य आदि के बीच आन्तरिक सामजस्य का ही अभिप्राय है, इसी प्रकार उपयुक्त शब्द प्रयोग का अर्थ है ऐसे शब्द का प्रयोग जिसके साथ वक्ता या लेखक का "प्रबल मानसिक ससर्ग हो। इसी प्रकार अलकार-योजना के विषय मे यद्यपि उन्होने 'समुचित विशेषण का प्रयोग किया है, किन्तु यहा भी समुचित का अर्थ न तो परम्परा रूढ है और न वह सकीर्ण अर्थ म सतुलित का ही वाचक है। उदात्त शली के शोभाकारक जिन धर्मों का विवेचन उन्होने किया है वे प्राय सभी अतिशयमूलक हैं, जिनम कल्पना के विस्तार और उत्तेजना की अपेक्षा रहती है—विस्तारणा, सार आदि म कल्पना के विस्तार की और शपथोक्ति प्रश्नालकार, छिन्नवाक्य पुनरावृत्ति आदि म उत्तेजना की। अत औचित्य और उपयुक्तता का सम्बन्ध शली के आतरिक उत्कर्ष से ही है ये शब्द उसकी बहिरग परिशुद्धता मात्र के द्योतक नही हैं, और इसका असदिग्ध प्रमाण है

लागिनुस का निम्नोद्धत वाक्य

'जहा तक मेरा प्रश्न है मैं यह बात अच्छी तरह जानता हू कि महान प्रतिभा, निर्दोपता से बहुत दूर होती है क्योंकि सर्वाङ्गीण परिशुद्धता मे अनिवार्यत क्षुद्रता की आशका रहती है, और औदात्य म, जसाकि विपुल सौभाग्य म भी होना है, कुछ न कुछ छिद्र अवश्य रह जाते हैं।"[१] इस प्रकार लोगिनुस का औचित्य महान का ही अग है वह शुद्ध का वाचक नहीं है अत उदात्त के साथ उसकी कोई असगति नहीं माननी चाहिए।

भारतीय वाङमय मे उदात्त की परिकल्पना का अभाव नही है। भारतीय दशन मे भगवान के विराट रूप की कल्पना और भारतीय काव्य म वाल्मीकि व्यास, कालिदास, भवभूति आदि के अनेक वणन उदात्त के भव्य निदशन हैं। वस्तुत भारतीय शब्द विराट उदात्त की समग्र धारणा को व्यक्त करने म अधिक समथ है गीता मे प्रदर्शित भगवान के 'विराट रूप (११।६-४४) से अधिक प्रबल 'उदात्त का उदाहरण दुलभ ही होगा। फिर भी भारतीय काव्यशास्त्र म उदात्त का विवेचन प्रत्यक्ष एव स्वतन्त्र रूप से नही किया गया। किन्तु धीरोदात्त नायक, वीर और अदभुतरस तथा ओज गुण के विवेचन मे उदात्त के भाव विभाव पक्ष की ओर गौडीया रीति तथा उदात्त अलकार के प्रसगो म उसके शली पक्ष की अप्रत्यक्ष विवक्षा अवश्य मिलती है

धीरोदात्त नायक—

महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः ।
स्थिरो निगूढाहंकारो धीरोदात्तो दृढव्रतः ॥ दशरूपक २।४

धीरोदात्त कोटि का नायक महासत्त्व, अत्यत गभीर, क्षमाशील अविकत्थन, स्थिर, निगूढ अहकारवाला तथा दृढव्रत होता है।

वीररस—

उत्तमप्रकृतिर्वीर उत्साहस्थायिभावकः ॥ सा० द० ३। २३२
कार्यारम्भेषु संरम्भः स्थेयानुत्साह उच्यते ॥ सा० द० ३। १७१

उत्तम पात्र म आश्रित वीररस होता है जिसका स्थायीभाव उत्साह है। काय के करने मे स्थिरतर उत्कट आवेश का उत्साह कहते है।

अदभुतरस—

अद्भुतो विस्मयस्थायिभावो ।३।२४२
विविधेषु पदार्थेषु लोकसीमातिवर्तिषु ।३।१७६

---

१ काव्य में उदात्त तत्त्व, पृष्ठ १६।

विस्फारश्चेतसो ॥ विस्मय उदाहृत ।३।१८०

अदभुत रस का स्थायीभाव विस्मय होता है। लोकसीमा का अतिक्रमण करनेवाले पदार्थों से उत्पन्न चित्त के विस्तार का नाम विस्मय है।

ओज गुण—

वीरबीभत्सरौद्रेषु क्रमेणाधिक्यमस्य तु।
वर्गस्याद्यतृतीयाभ्या युक्तौ वर्णौ तदन्तिमौ ॥
उपर्यधो द्वयोर्वा सरेफाष्टठडढै सह।
शकारश्च षकारश्च तस्य व्यञ्जकतां गता ॥
तथा समासो बहुलो घटनौद्धत्यशालिनी। सा० द० ८।४, ५, ६

अर्थात "चित्त का विस्तार स्वरूप दीप्तत्व 'ओज कहाता है। वीर, बीभत्स, और रौद्र रसो मे क्रम से इसकी अधिकता होती है। यहा भी वीर आदि शब्द उपलक्षण हैं, अत वीराभास आदि म भी इसकी स्थिति जाननी चाहिए। वर्गों के पहले अक्षर के साथ मिला हुआ उसी वर्ग का दूसरा अक्षर और तीसरे के साथ मिला हुआ उसका अगला (चौथा) अक्षर तथा ऊपर या नीचे अथवा दोनो ओर र से युक्त अक्षर एव ट, ठ, ड, ढ, श और ष ये सब ओज के व्यजक होते हैं। इस प्रकार लम्बे लम्बे समास और उद्धत रचना ओज का व्यजन करते है। (विमला टीका २६५)

ओज प्रकाशकैर्वर्णैर्बन्ध आडम्बर पुन ॥३॥
समासबहुला गौडी ॥

ओज को प्रकाशित करनेवाले कठिन वर्णों से बनाए हुए अधिक समासो से युक्त उद्भट बन्ध को गौडी रीति कहते हैं।

उदात्त अलकार—

उदात्त का अर्थ है—उत्कर्षेण आदीयते गृह्यतेऽस्मेति उदात्तम। उदात्त अलकार म वर्णनीय अर्थ का समृद्धि द्वारा अथवा महत्पुरुषो के अग भाव द्वारा उत्कर्ष वर्णन किया जाता है।

उपर्युक्त उद्धरणो म धीरोदात्त के विवेचन के अतर्गत महासत्त्व एव दृढव्रत और अदभुतरस के विवेचन म लोकसीमातिवर्ती जैसे ल क्षण उदात्त के विभाव पक्ष का सकेत करते हैं उधर उत्साह, स्थायी तथा ओज गुण के विवेचन के अन्तर्गत सरम्भ, चित्त विस्तार और दीप्तत्व म भाव-पक्ष का निर्देश है, और ओजगुण तथा गौडी रीति के लक्षणो म ओज प्रकाशक वर्ण योजना, समास-बहुलता, उद्भट बध आदि उदात्त के रीति पक्ष की ओर इगित करते हैं। उदात्त अलकार के लक्षण म निर्दिष्ट उत्कर्ष और समृद्धि म भी रीति पक्ष की अपेक्षा विभाव पक्ष का ही सकेत

अधिक है और इसीलिए कतिपय आलोचकों ने उदात्त की अलंकारता पर संदेह किया है। इस प्रकार संस्कृत-काव्यशास्त्र में खण्डशः उदात्त के अधिकांश लक्षणों का अनुसंधान किया जा सकता है फिर भी उदात्त के समग्र रूप का विवेचन कहीं नहीं है। न केवल वीर उदात्त का पर्याय है और न केवल अद्भुत, वीर में विस्तार की स्थिति अनिवार्य नहीं है और अद्भुत में संरम्भ की। इसी प्रकार ओजगुण में चित्त का विस्तार और दीप्ति दोनों का सद्भाव होने पर भी गरिमा और भव्यता अनिवार्य नहीं है। गौडीया रीति के विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है—वहां इन दोनों गुणों की प्रायः न्यूनता रहती है और इसीलिए अधिकांश आचार्यों ने उसे काव्य की उत्कृष्ट शैली नहीं माना। इस प्रकार उदात्त के समग्र रूप का विवेचन हमारे यहां नहीं है, इसमें संदेह नहीं। उदात्त की कल्पना तो हमारे यहां थी किन्तु विधान नहीं है। मैं इसे भारतीय काव्यशास्त्र का एक अभाव ही मानता हूं क्योंकि औदात्त्य काव्य कला के गौरव का मानदण्ड है।

सामान्य सिद्धान्त

प्रमुख रूप से उदात्त का प्रतिपादन करते हुए लोगिनुस प्रसगवश कला के विषय म कतिपय मूलभूत सिद्धान्तो का विवेचन भी करते गए हैं जिनके आधार पर उनके कला-दर्शन की रूपरेखा प्रस्तुत करना कठिन नही है।

कला और प्रकृति

सबसे पहला और आधारभूत प्रश्न है कला और प्रकृति का परस्पर सम्बन्ध। लोगिनुस ने कला और प्रकृति म स्पष्ट पार्थक्य माना है। कला शिक्षा अभ्यास आदि के द्वारा अर्जित गुण है अर्थात् वह वर्तमान शिल्प विधान की पर्याय है और प्रकृति का अर्थ है जन्मजात शक्ति या प्रतिभा। परिणामत कला म नियम विधान की धारणा निहित है और प्रकृति के साथ उन्मुक्त एव स्वतन्त्र शक्ति प्रसार की परिकल्पना सनद्ध रहती है।[1] इन दोना की भेद-कल्पना प्राय इसी प्रकार की धारणाओ पर आश्रित है।[2] परन्तु भेद का अर्थ विरोध अथवा असम्बन्ध नही है—वास्तव म प्रकृति और कला का बडा गहरा अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। लोगिनुस ने अत्यन्त निर्भ्रान्त शब्दो म प्रकृति और कला की विरोध-कल्पना का खण्डन किया है 'एक विचारक का कहना है कि उदात्त प्रवृत्ति तो नैसर्गिक होती है और शिक्षा द्वारा उपलब्ध नही होती, प्रकृति ही ऐसी कला है जो उसे अपनी परिधि म समेट सकती है। ऐसे लोगो का विचार है कि प्रकृति की रचनाएं कला के नियमो द्वारा म्लान होकर निकृष्टतर और पूर्णत दुर्बल हो जाती हैं। पर मेरा विचार है कि यदि इस बात पर ध्यान दिया जाए कि प्रकृति की कार्यविधि नियमत भावावेग और औदात्य के विषय म उन्मुक्त एव स्वतन्त्र होते हुए भी मनमानी और पूर्णत व्यवस्था विहीन नही है, तो वस्तुस्थिति कुछ भिन्न ही जान पडेगा।'[3]

इसम सन्देह नही कि काव्य म "प्रकृति सर्वदा ही मौलिक और प्राणभूत तत्त्व के रूप मे होती है, किन्तु उसके लिए व्यवस्था और नियम की आवश्यकता भी

१, २ काव्य में उदात्त तत्व, पृ० ४५। ३ वही पृष्ठ ४५।

रहती है उचित निर्देशन के बिना "उसकी स्थिति अस्थिर और निराधार' हो जाती है। प्रकृति का मूल आधार प्रेरणा है किन्तु नियंत्रण के बिना वह विकृति बन जाती है। इस प्रकार लांगिनुस का दृढ़ विश्वास है कि "कला का उपयोग हर प्रकार से प्रकृति का सहायक होना है क्योंकि इन दोनों के योग से ही सम्पूर्णता की उपलब्धि निश्चित हो सकती है।'[1] "कला प्रकृति के समान प्रतीत होने पर ही सम्पूर्ण होती है और प्रकृति तभी अपने उद्देश्य में सफल होती है जब उसके गर्भ में कला छिपी हो,'[2] इस स्थापना को पुष्ट करने के लिए उन्होंने प्रसिद्ध यूनानी विचारक और वक्ता देमोस्थेनेस का मत उद्धृत किया है। देमोस्थेनेस ने साधारण मानव जीवन के विषय में यह विचार प्रकट किया है कि सौभाग्य सबसे बड़ा वरदान है अनन्य किन्तु सद्बुद्धि जिसका स्थान दूसरा है महत्त्व में किसी भी प्रकार कम नहीं है क्योंकि उसके अभाव में तो अनिवार्य रूप से सौभाग्य का भी विनाश हो जाता है। इस सिद्धांत को हम काव्य भाषा के क्षेत्र में भी लागू कर सकते हैं जहां सौभाग्य का स्थान प्रकृति को प्राप्त है और सद्बुद्धि का स्थान कला का।'[3]

इसी प्रसंग में लेखक ने एक सुन्दर तर्क प्रस्तुत किया है और वह यह कि प्रकृति के महत्त्व का ज्ञान भी तो हमको कला के शिक्षण से ही प्राप्त होता है।[4] अतः यह सिद्ध है कि प्रकृति का महत्त्व कला से निरपेक्ष नहीं हो सकता। यह मान लेने पर भी कि प्रकृति कला से निरपेक्ष नहीं है यह प्रश्न उठता है कि इन दोनों का सापेक्षिक महत्त्व क्या है—अर्थात् प्रकृति और कला में किसका महत्त्व अधिक है। उत्तर स्पष्ट है प्रकृति का। उपर्युक्त उद्धरणों में प्रकृति को मौलिक और प्राणभूत आधार-तत्त्व के रूप में स्वीकार कर, या उसे सौभाग्य के तथा कला को सद्बुद्धि के समकक्ष मानकर लोंगिनुस ने निर्भ्रांत शब्दों में अपना निर्णय दे दिया है।

यह प्रश्न पाश्चात्य आलोचनाशास्त्र और भारतीय काव्यशास्त्र दोनों में समय-समय पर उठता रहा है। पश्चिम के काव्य-दर्शन में दो चिंताधाराएं आरम्भ से ही प्रवाहित रही हैं। एक का उद्गम है प्लेटो और दूसरी का अरस्तू। प्लेटो और उनसे प्रभावित परवर्ती स्वच्छंदतावादी विचारक प्रेरणा को या कहिए आत्मिक प्रेरणा को जीवन की समस्त उपलब्धियों का, विशेषतः काव्य का मूल स्रोत मानते हैं, उधर अरस्तू और उनसे प्रभावित विचारक प्रतिभा या अन्तःप्रेरणा के प्राथमिक महत्त्व को स्वीकार करते हुए भी कला को विशेष महत्त्व देते हैं। पहले वर्ग में प्लेटो, सिसेरो, दांते, शेक्सपियर, कालरिज, वर्ड्सवर्थ तथा अन्य रोमानी कवि, रस्किन और क्रोचे आदि आते हैं और दूसरे में अरस्तू, होरेस, बुअलो

१ काव्य में उदात्त तत्त्व पृष्ठ १०२।
२ वही पृष्ठ ८२। ३ वही, पृष्ठ ४५-४६। ४ वही, पृष्ठ ४६।

पोप और इलियट आदि की गणना की जाती है। लागिनुस स्वभाव से प्रथम वग के अधिक निकट हैं, उनपर प्लेटो का प्रभाव गहरा है, परन्तु स्वच्छन्दतावादियो की भाति व कला नियमो की उपेक्षा नही करते—उनका विश्वास है कि मूलत अन्त स्फूर्ति होते हुए भी औदात्य को कला के शिक्षण द्वारा सिद्ध किया जा सकता है। भारतीय काव्यशास्त्र म प्रकृति और कला के स्थान पर प्राय समान अथ म शक्ति और निपुणता का प्रयोग हुआ है और यहा भी इन दोनो के सहयोग और प्रतियोग की चर्चा विस्तार से हुई है। भामह ने स्पष्ट शब्दो मे प्रतिभा की महत्त्व प्रतिष्ठा की है—गुरु के उपदेश से शास्त्र का अभ्यास तो जडबुद्धि भी कर सकते हैं किन्तु काव्य की रचना म केवल प्रतिभावान ही समथ होते हैं। दण्डी ने प्रतिभा का गौरव तो स्वीकार किया है किन्तु निमल शास्त्र ज्ञान और अमन्द अभियोग को भी उचित महत्त्व दिया है। रुद्रट थोड और आगे बढ गए हैं और उन्होने प्रतिभा को भी दो प्रकार का माना है सहज और उत्पाद्य या आहाय। इनके अतिरिक्त प्राय सभीने उसे नसर्गिकी माना है और निपुणता से महत्तर माना है। आनन्द वधन ने तो लिखा है कि निपुणता के अभाव का दोप कवि की प्रतिभा द्वारा सवृत हो जाता है। वाग्भट्टादि भी प्रतिभा को काव्य-कारण और निपुणता आदि को उसका भूषण मानते हैं। पण्डितराज जगन्नाथ ने प्रतिभा के माहात्म्य का और भी सबल शब्दो म प्रतिपादन किया है और व्युत्पत्ति को उसका पोषक मात्र माना है। इस परम्परा म केवल एक अपवाद हैं आचाय मगल जिन्होने निपुणता या व्युत्पत्ति को प्रतिभा से महत्तर माना है और आनन्दवधन के प्रत्युत्तर म लिखा है 'कवि की व्युत्पत्ति उसकी अशक्ति का सवरण कर लेती है।' किन्तु मगल का मत अति वाद ही है और भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा म आनन्दवधन का मत ही मान्य रहा है। लागिनुस का मत हमारी मान्य परम्परा स भिन्न नही है—वस्तुत भारतीय आचार्यों की भाति वे भी यही मानते हैं कि प्रकृति अथवा प्रतिभा और कला या निपुणता म प्राथमिक महत्त्व प्रतिभा का ही है किन्तु कला के द्वारा उसका उचित पोषण एव सस्कार होता है।

कला के मूल्य

कला को लागिनुस एक प्रकार का मानसिक अनुशासन मानते हैं जिसके द्वारा स्वाभाविक क्षमता का किसी निश्चित स्तर तक विकास किया जा सकता है 'किन्तु, आश्चय है, उसने इस बात का विवेचन कि हम अपनी स्वाभाविक क्षमता का औन्नत्य के किसी स्तर तक किस प्रकार उन्नमित कर सकते हैं अनावश्यक समझकर छोड दिया है।' (पृष्ठ ४३)

उदात्त अभिव्यक्ति—

लोंगिनुस के अनुसार कला का प्राण-तत्त्व है औदात्य जो मूलत जन्मजात और अन्त प्रेरणा रूप होते हुए भी व्यवहार म "अभिव्यक्ति की विशिष्टता और उत्कृष्टता का नाम है। (पृष्ठ ४४) "अत उदात्त अभिव्यक्ति कला की पहली आवश्यकता है और इसीके आधार पर श्रेष्ठ कवियो और लेखको ने अपनी प्रतिष्ठा और अमर यश का अर्जन किया है। (पृ० ४४) प्रस्तुत निबन्ध का मुख्य प्रतिपाद्य ही वास्तव म यहा है—लेखक ने बडे विस्तार से आग्रहपूर्वक यह प्रतिपादित किया है कि उदात्त अत प्रेरणाओ को अभिव्यक्त करने के लिए किस प्रकार उदात्त शली का निर्माण किया जा सकता है क्योकि इसके बिना उदात्त अत प्रेरणाओ का कोई मूल्य नही रह जाता।

शैली की परिशुद्धता और प्रतिभा—

इसमे सदेह नही कि लोगिनुस उदात्त अभिव्यक्ति को प्राथमिक महत्त्व देते हैं किन्तु इसका अर्थ यह नही है कि वे परवर्ती रीतिवादियो की भाति शली की परिशुद्धता को कला का अनिवाय या सवश्रेष्ठ गुण मानते हैं। उन्होने काव्यालोचन का एक अत्यन्त मौलिक प्रश्न उठाकर निर्भ्रान्त शब्दो मे उसका समाधान किया है

'हमे कविताओ और गद्य रचनाओ म किस बात को अधिक महत्त्व देना चाहिए गरिमा को जिसके साथ कुछ न कुछ दोष भी लगे हो अथवा ऐसी सफलता को जो साधारण हो पर साथ ही हर तरफ से ठीकठाक और सवथा दोष मुक्त हो।[1]

दूसरे शब्दो म काव्य के मूल्याकन का मूल आधार क्या है—शल्पिक निर्दोषता या प्रतिभा का उद्रेक? लोगिनुस का स्पष्ट उत्तर है प्रतिभा का उद्रेक। और उनका तक इस प्रकार है

"जहा तक मेरा प्रश्न है मैं यह बात अच्छी तरह जानता हू कि महान प्रतिभा निर्दोषता से बहुत दूर होती है। क्योकि सर्वांगीण शुद्धता म अनिवायत क्षुद्रता की आशका रहती है और औदात्य म, जसाकि विपुल सौभाग्य मे भी होता है, कुछ न कुछ छिद्र अवश्य रह जाता है। इसम सन्देह नही कि निम्न और मध्यम श्रेणी के व्यक्ति नियमत विनिपात से मुक्त होते हैं और अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित रहते है क्योकि वे कभी भी शिखर पर चढने का साहस नही करते। दूसरी ओर महान प्रतिभावान व्यक्तियो के लिए—उनकी महानता के कारण ही सदा बडा खतरा

१ काव्य में उदात्त तत्व, पृष्ठ ६५ ६६।

बना रहता है।[1]

लोगिनुस का तर्क दोहरा है

(१) पूर्ण शुद्धता अथवा निर्दोषता क्षुद्रता की परिचायक है क्योंकि शुद्धता पर दृष्टि केंद्रित रखनेवाला व्यक्ति अधिक सावधानी बरतने के कारण प्राय सशक्त और साहसहीन हो जाता है। वह सुरक्षा के लिए इतना अधिक व्यग्र रहता है कि कोई भी जोखम उठाने का साहस नहीं करता, जो शिखर पर चढ़ने का साहस ही नहीं करता उसे विनिपात का भय कैसा

गिरते हैं शहसवार ही मैदाने जंग में।
वह तिफ्ल क्या गिरे कि जो घुटनों के बल चले।

इस प्रकार के व्यक्ति सदा नीचे की ओर ही देखते हैं ऊंचाई की ओर नहीं—अत उनका दृष्टिकोण प्राय क्षुद्र और संकीर्ण हो जाता है। इसलिए अतिशय परिशुद्धता की स्पृहा में क्षुद्रता की आशंका रहती है।

(२) प्रतिभा के उद्रेक में कुछ न कुछ त्रुटि अवश्य रह जाती है। प्रतिभा की स्थिति विपुल सौभाग्य के समान है—जिस प्रकार सौभाग्य के प्राचुर्य में कुछ न कुछ दोष अनिवार्यत रह जाते हैं इसी प्रकार प्रतिभा के वैभव में भी छोटी मोटी कमियां अनिवार्यत रह जाती हैं। प्रतिभावान व्यक्ति की दृष्टि सदा ऊंचाई की ओर रहती है—वह असाधारण विषयों को ग्रहण करता है। उसके स्वभाव में साहस का प्राबल्य होने के कारण साधारण के प्रति एक प्रकार का उपेक्षाभाव रहता है। अत प्रतिभावान व्यक्तियों के लिए उनकी महानता के कारण ही सदा छोटे मोटे दोषों का खतरा बना रहता है। उदाहरण के लिए होमर अथवा अन्य प्रथम कोटि के कवियों का काव्य इसका प्रमाण है उनके काव्य का विस्तार उनके विषय की गरिमा, विचारों की बुलन्दी धारणाओं की उदात्तता आदि उन्हें सामान्य बातों की ओर ध्यान देने का अवकाश ही नहीं देती। स्वभावत उनकी कृतियों में अनेक छोटे मोटे दोष ढूंढे जा सकते हैं। किन्तु इन दोषों से उनके गौरव के मूल्यांकन में कोई अन्तर नहीं पड़ता। उनकी प्रतिभा की ज्वाला में इस प्रकार के दोष क्षण भर में भस्म हो जाते हैं।[2]

इसीलिए निर्दोष शिल्प-सौन्दर्य और सदोष प्रतिभा विस्तार इन दोनों में स्पर्धा का कोई प्रश्न ही नहीं है पहला मध्यम कोटि के कवियों का गुण है और दूसरे की स्थिति कतिपय असाधारण कवियों में ही होती है।

इसी प्रसंग में लांगिनुस ने एक और प्रश्न उठाया है 'साहित्य में किसका

१ काव्य में उदात्त तत्त्व, पृष्ठ ६६।
२ वही पृष्ठ ६७।

महत्त्व अधिक मानना चाहिए—बहुसंख्यक गुणों का अथवा उच्च कोटि के गुणों का ?"[1] इस प्रश्न का उत्तर उन्होंने यूनान के लेखकों—ह्यु परिदेस और देमोस्थेनेस की तुलना के द्वारा प्रस्तुत किया है। ह्यु परिदेस में देमोस्थेनेस की अपेक्षा 'स्वर वैचित्र्य और गुणों की संख्या कहीं अधिक है।' उसकी रचनाएं चरित्र चित्रण की कुशलता, वाग्वदग्ध्य, परिष्कृत उपहास, अभिजात सहजता, सुनिर्दिष्ट तीखा व्यंग्य और समस्त रचना को एक प्रकार का अनुकरणीय सौन्दर्य प्रदान करने की क्षमता आदि अनेक गुणों से भरपूर हैं। किन्तु ये सभी गुण मध्यम कोटि के हैं—उनमें ऐसा गुण कोई भी नहीं है जो उत्तम कोटि का हो, जिसके क्षेत्र में वह अद्वितीय हो। "वह एक ऐसे खिलाड़ी की भांति है जो हर क्षेत्र में मीर बनते-बनते रह जाता है। इसके विपरीत देमोस्थेनेस में इनमें से अधिकांश गुणों का अभाव है, चरित्र चित्रण में वह निपुण नहीं है, सहजगुण उसमें नहीं हैं, न नम्यता है। जहां वह प्रयत्नपूर्वक परिहासमय अथवा मनोरंजक बनने का प्रयत्न करता है, वहां हास्य उत्पन्न करने की जगह स्वयं ही हास्यास्पद बन जाता है और जब वह सौंदर्य के समीप पहुंचने का प्रयत्न करता है तो उससे और भी दूर चला जाता है।[2] किन्तु फिर भी ह्यु परिदेस की देमोस्थेनेस से क्या समता? ह्यु परिदेस में चाहे कितने ही गुण क्या न हों, उसमें औदात्य का अभाव है—उधर "देमोस्थेनेस मानो किसी भण्डार से निकालकर ऐसे गुणों की झड़ी लगा देता है जो भव्यतम उदात्त भाव से सम्बद्ध हैं और जो उत्कृष्टतम कोटि के हैं, जैसे ओजस्वी वाग्मिता, जीवंत आवेग, प्रचुरता, तत्परता, जहां उपयुक्त हो वहां गति तथा ऐसी शक्ति और वेग जिसकी समता करना संभव नहीं।"[3] ह्यु परिदेस के गुण जहां शैली शिल्प से सम्बद्ध तथा साधारण कोटि के हैं वहां देमोस्थेनेस के गुण असाधारण हैं—वे मानवीय न होकर अलौकिक हैं। अतः संख्या में कहीं कम होने पर भी प्रभाव में उतने ही अधिक होने के कारण, देमोस्थेनेस के गुण ही अधिक काम्य हैं और उनके आधार पर सब मिलाकर देमोस्थेनेस ह्यु परिदेस की अपेक्षा कहीं महान है। संक्षेप में, एक तो प्रातिभ गुण हैं जो आत्मा की ऊर्जा से प्रोद्भासित हैं और दूसरे शिल्पिक गुण हैं जो शिक्षा संस्कार आदि के परिणाम हैं। लोंगिनुस का दृढ़ मत है कि प्रथम कोटि के गुणों का ही महत्त्व अधिक है—द्वितीय कोटि के गुण संख्या में अधिक होने पर भी प्रभाव आदि में हीनतर होते हैं। अतः मूल्यांकन का वास्तविक आधार प्रातिभ गुण ही हो सकते हैं—शिल्पिक गुण नहीं।

---

१ काव्य में उदात्त तत्त्व पृष्ठ ६६।

२ वही पृष्ठ ६८-६६। ३ वही, पृष्ठ ६६।

उपर्युक्त विवेचन में शास्त्रीय आलोचना से भिन्न स्वच्छन्दतावादी आलोचना का बीज निहित है। शास्त्रीय आलोचना में जहा अंगों का विश्लिष्ट परीक्षण होता है, वहा स्वच्छन्दतावादी आलोचना में अंगी की समग्र रूप में संश्लिष्ट समीक्षा की जाती है। शास्त्रीय आलोचक का ध्यान रचना के बहिरंग पर केन्द्रित रहता है जब कि स्वच्छन्दतावादी आलोचना काव्य के आत्मभूत अन्तरंग तत्त्वों और उनके सारभूत प्रभाव को ही महत्त्व देती है। शिल्पगत परिशुद्धता या दोषाभाव और गुणाधिक्य ये दोनों स्तरीय मूल्य हैं किन्तु अन्तःप्रेरणा, उदात्त आवेग, आत्मिक ओज आदि काव्य के तात्त्विक मूल्य हैं—अतएव इन्हीं पर निर्भर रहना समीचीन है। भारतीय काव्यशास्त्र में भी यह प्रश्न सामने आया है। प्रारम्भिक देहवादी आचार्य वामन आदि ने काव्य-सौंदर्य का उद्भव दोष के त्याग और गुणालंकार के आदान में ही माना है

सौन्दर्यमलंकारः ॥ स दोषगुणालंकारहानादानाभ्याम्। (काव्यालंकारसूत्र वृत्ति १।१—२-३)

उनकी वस्तुनिष्ठ काव्य-दृष्टि बहिरंग पर ही केन्द्रित रही है अतः उनकी सौन्दर्य-कल्पना दोषों के परित्याग और गुणालंकार के समावेश तक ही सीमित रही है। इसीके आधार पर आगे चलकर मम्मट ने अदोषता एवं सगुणता को काव्य के लक्षण में अनिवार्य रूप से अन्तर्भूत कर लिया है

तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि। काव्यप्रकाश, १।४

मम्मट की इस परिभाषा का विश्वनाथ तथा जगन्नाथ आदि परवर्ती आचार्यों ने उग्र विरोध करते हुए सगुणता तथा अदोषता दोनों की अनिवार्यता का खण्डन किया है।[1] विश्वनाथ ने रस को आत्मा मानते हुए उसके सद्भाव को ही कवित्व का प्रमाण माना है और इसी प्रकार पण्डितराज जगन्नाथ ने रमणीय अर्थ की अभिव्यक्ति को काव्य का प्राण घोषित किया है। हमारे यहा भी "अहो निर्दोषता महान् गुण" की अनुगूंज कभी-कभी सुनाई पड़ती रही है। किन्तु आत्मवादी आचार्यों ने भावात्मक दृष्टिकोण को ही ग्रहण करते हुए एक तो दोष की स्थिति को सापेक्षिक माना है अर्थात् यह माना है कि विशेष अवस्था में वह दोष नहीं रहता—यहा तक कि गुण भी बन जाता है, दूसरे उसके अभाव-मात्र को काव्य का विधायक तत्त्व कभी नहीं माना। लांजाइनस, इस प्रकार, भारतीय दृष्टि से वामन आदि देहवादी आचार्यों से सर्वथा भिन्न आनन्दवर्धन, जगन्नाथ आदि आत्मवादी आचार्यों की कोटि में ही आते हैं।

---

१ दर्पण साहित्यदर्पण, विमला टीका (१९५६) पृ० १२ १४ और रसगंगाधर [हिन्दी अनुवाद (चौखम्बा) १९५५] पृ० २१-२३।

कला का प्रयोजन

कला के प्रयोजन के विषय मे लांगिनुस की मान्यता उनके मूल सिद्धान्त के अनुरूप ही है। कला का उद्देश्य उनके अनुसार, अनुनय या मनोरंजन करना नही है—पारिभाषिक शब्दावली में शिक्षा या प्रीति नहीं है—वरन आत्मा का उत्कर्ष है। विधि निषेध के आधार पर सत् असत का ज्ञान प्रदान करना, कौतूहल उत्पन्न करना या ऐन्द्रिय आनन्द की सृष्टि करना कला के लिए पर्याप्त नही है। कला की प्रेरणा तो अधिक उदात्त होती है कवि की आत्मा से ही कला की उद्भूति होती है, अत सहृदय की आत्मा की उदात्त अनुभूतियों को उद्दीप्त करना ही उसकी सिद्धि है।

कला का आधार नैतिक या राजनीतिक ?——

निबन्ध के अन्त में लांगिनुस ने अत्यन्त प्रबल शब्दों में काव्य के नैतिक आधार की प्रतिष्ठा की है। अपनी स्थापना के पूर्व-पक्ष के रूप में उन्होंने काव्य के राजनीतिक आधार का भी मनोयोगपूर्वक विवेचन किया है। यूनान की साहित्यिक परम्परा मे सिसेरो आदि अनेक विचारकों का यह विश्वास था कि साहित्य और कला का स्वतन्त्रता से सहज सम्बन्ध है × × × प्रतिभा की धात्री जनतन्त्र व्यवस्था ही है और साहित्यिक क्षमता का उत्थान-पतन जनतन्त्र और केवल जनतन्त्र के साथ होता रहता है।[1] इस मान्यता की पुष्टि में तीन तर्क प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

१ स्वतन्त्रता में उन्नतमना व्यक्तियों की कल्पना को परिपुष्ट करने और आशा को प्रेरणा देने की शक्ति है।

२ जनतन्त्र व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी प्रतिभा का विकास करने और उसके आधार पर मूर्धन्य स्थान प्राप्त करने की स्वतन्त्रता रहती है। इस प्रकार की स्पर्धा से व्यक्ति के गुण मानो रगड़ खाकर चमक उठते हैं और नैतिक जीवन में स्वतन्त्र भावना के आलोक से जगमगाते रहते हैं।

३ इसके विपरीत परतन्त्रता में सामान्य जीवन की भांति प्रतिभा भी बंधन में जकड़ जाती है और उसका विकास अवरुद्ध हो जाता है।

४ दासता से (चाहे वह कितनी ही न्याय सिद्ध क्यों न हो) उदात्त भावनाओं का क्षय हो जाता है और मानव मन रूढ़ रीतियों में जकड़कर ऊर्जा से वंचित हो जाता है।

---

१ काव्य में उदात्त तत्त्व, पृ० ११२।

इस प्रकार साहित्य के राजनीतिक आधार को पूर्व-पक्ष के रूप मे प्रस्तुत कर लोंगिनुस अपने सिद्धान्त-पक्ष का प्रस्थापन करते हैं। उनका मत यह है कि साहित्य का आधार मूलत राजनीतिक न होकर नैतिक ही होता है—साहित्यिक प्रतिभा का उत्थान-पतन जनतत्र या राजतत्र पर निर्भर न रहकर चारित्र्य पर—नैतिक आचार विचार पर ही निर्भर करता है।

'किन्तु विचार कीजिए कहीं यह तो सत्य नही है कि महान प्रतिभा को ससार की शान्ति नहीं, बल्कि यह अनन्त युद्ध ही नष्ट करता है जिसने हमारी इच्छाओं को जकड़ लिया है और इससे भी अधिक घातक हैं हमारे वे भावावेग जिन्होने वर्तमान युग को जैसे सेना का जाल बिछाकर अधिकृत कर रखा है और जो उसे निरतर सत्रस्त कर लूट-खसोट रहे हैं क्योंकि धन के प्रेम ने (जिस रोग से आज हम सभी बुरी तरह ग्रस्त हैं) और विषय भोग के प्रेम ने हम अपना दास बना लिया है बल्कि यह कहा जा सकता है कि हमारे शरीर और आत्मा दोनो को अतल गर्त म डुबा दिया है। धन का प्रेम ऐसा रोग है जो मनुष्य को क्षुद्र बनाता है और विषय भोग का प्रेम उसे निकृष्ट से निकृष्ट बनाता है। [1]

धन लिप्सा और विषय लिप्सा से अन्य दुर्गुण उत्पन्न हो जाते हैं जैसे आडम्बर, दम्भ और विलास—और इनमे धृष्टता नियमहीनता और निर्लज्जता आदि का जन्म होता है। इन दुर्गुणों के कारण मनुष्यों म दृष्टि ऊपर उठाने अथवा यश की कामना करने की कोई क्षमता नही रहती। ऐसा जीवन अन्त म अपने चरम विनाश को प्राप्त होता है आत्मा की ऊर्जा फीकी पड जाती है, मुरझाकर झड जाती है और घृण्य हो जाती है। [1]

लोंगिनुस का आशय यह है कि प्रतिभा का ह्रास या विकास पराधीनता अथवा स्वाधीनता के कारण नही, वरन समाज के नैतिक स्तर के उत्थान-पतन के कारण होता है। उदाहरण के लिए उनके अपने युग म प्रतिभा का ह्रास इसलिए नहीं हुआ कि उस समय जनतत्र-व्यवस्था नही रह गई थी, वरन् इसलिए कि समाज का नैतिक स्तर गिर गया था। उस समय उच्चतर आदर्शों का लोप हो गया था, जीवन के हीनतर मूल्य जैसे धन का मोह विषय लिप्सा, विलासप्रियता, आडम्बर आदि का प्रचार था और परस्पर ईर्ष्या-द्वेष परहिंसा आदि कुत्सित वृत्तियाँ उभर रही थीं। इस प्रकार नैतिक और चारित्रिक अपकर्ष के युग म काव्य प्रतिभा का अपकर्ष स्वाभाविक ही था, क्योंकि महान शब्द उन्हीं के मुख से निस्सृत होते हैं

---

१ काव्य में उदात्त तत्त्व पृ० ११३ ११४।

२ वही पृष्ठ ११८।

जिसके विचार गम्भीर और गहन हों।"[1] वास्तव में लांगिनुस की यह स्थापना उनकी इस मूलभूत स्थापना का ही विस्तार है कि "औदात्य महान आत्मा की प्रतिध्वनि है।"

उपर्युक्त स्थापना अपने आपमें सर्वथा स्पष्ट है अतः और अधिक व्याख्या की आवश्यकता नहीं। साहित्य के राजनीतिक आधार की अपेक्षा उसका नैतिक आधार ही अधिक मान्य है इसमें सन्देह नहीं, क्योंकि 'नैतिक' का ग्रहण लांगिनुस ने संकीर्ण और रूढ़ अर्थ में—विधि निषेध-परक अथवा आचारमूलक अर्थ में—नहीं किया। नैतिक से आशय स्पष्टतः आध्यात्मिक ही है जिसके द्वारा मानव आत्मा की उदात्त वृत्तियों का उत्कर्ष अभिप्रेत है। किन्तु यह स्वीकार कर लेने के बाद ही एक प्रश्न उठता है: क्या आत्मा के उत्कर्ष का स्वतन्त्रता से कोई सम्बन्ध नहीं है? क्या स्वाधीनता में आत्मा का उत्कर्ष और पराधीनता में उसका अपकर्ष नहीं होता? अतः जो विचारक स्वाधीनता को प्रतिभा का प्रकाशक और दासता को उसका घातक मानते हैं, उनके मत का इतनी आसानी से खण्डन नहीं किया जा सकता। प्रतिभा के विकास के लिए आत्मा के उत्कर्ष को प्रमाण मानकर भी स्वाधीनता का महत्त्व नष्ट नहीं होता। किन्तु यहाँ स्वाधीनता-पराधीनता का ग्रहण स्थूल राजनीतिक अर्थ में नहीं करना चाहिए: राजनीतिक पराधीनता के युग में भी प्रथम कोटि की प्रतिभा का विकास सम्भव है यदि समाज का मन परतन्त्र नहीं है, और यदि समाज का मन दासवृत्ति को स्वीकार कर लेता है तो तथाकथित राजनीतिक स्वतन्त्रता भी प्रतिभा का उत्कर्ष नहीं कर सकती। कभी-कभी परतन्त्र अवस्था में भी किसी देश की प्रतिभा चमचमा उठती है। उदाहरण के लिए उन्नीसवीं शती का अंतिम चरण और बीसवीं शती का पूर्वार्ध, राजनीतिक पराधीनता के रहते हुए भी, भारतीय प्रतिभा के विकास का स्वर्णयुग है: किन्तु इसका कारण यह है कि भौतिक दृष्टि से पराधीन होते हुए भी भारत की आत्मा इस युग में प्रतिभा के 'उस सुन्दर और उर्वर स्रोत—स्वतन्त्रता' का आस्वादन कर चुकी थी। इसी प्रकार दासता से अभिप्राय राजनीतिक आर्थिक बन्धना का नहीं है, वरन मन की दासता का है जो भौतिक स्वाधीनता के युग में भी प्रतिभा को पंगु कर देती है। अतः स्वाधीनता और पराधीनता को व्यापक एवं आंतरिक अर्थ में ग्रहण करना चाहिए कोरे राजनीतिक आर्थिक अर्थ में नहीं—और इस अर्थ में प्रतिभा के उत्कर्ष के साथ उसका सम्बन्ध न मानना समीचीन नहीं होगा। लोंगिनुस ने स्वतन्त्रता का प्रयोग संकुचित राजनीतिक अर्थ में अर्थात् जनतन्त्र के संदर्भ में किया

१ काव्य में उदात्त तत्व, पृष्ठ ५५

है, और तत्कालीन नतिक विकृतिया का देखते हुए दढतर नियत्रण (राजतन्त्र) की सिफारिश की है। उस युग की राजनीतिक स्थिति और उसपर आश्रित मान्यताओ के प्रकाश म इस तथ्य को समझना बहुत कठिन नही है फिर भी ऐसा अवश्य लगता है जसे यह मान्यता लागिनुस के सम्पूर्ण दष्टिकोण से मेल नही खाती। व्यक्ति की स्वतन्त्रता के दुरुपयोग के लिए उत्तरदायी कारणो का निराकरण न कर व्यक्ति की स्वतन्त्रता का ही निषेध करना कम से कम लागिनुस के अनुरूप नही है।

सावभौम और सावकालिक प्रतिमान—

कला के नतिक तथा आध्यात्मिक आधार के प्रति आस्था का स्वाभाविक परिणाम है—कला के सावभौम और सावकालिक प्रतिमानो मे विश्वास क्योकि जिस कला का उद्भव और विकास आत्मा के उत्कप पर आश्रित हो और जिसका उद्देश्य भी आत्मिक उल्लास हो, उसका मूल्य एकदेशीय या एकयुगीन नही हो सकता। इसलिए लागिनुस ने कला के उन्ही उदाहरणो को श्रेष्ठ और सच्चा माना है 'जो सब व्यक्तियो को सवदा आनन्द दे सकें क्योकि जब विभिन्न रुचियो, वत्तियो महत्वाकाक्षाओ, अवस्थाओ और भाषाओ के व्यक्तियो का किसी एक ही विषय पर एक-सा मत हो, तो यह निणय जो एक प्रकार से अनेक परस्पर विपरीत तत्त्वो के समन्वय मे प्राप्त होता है आलोच्य वस्तु के प्रति हमारी आस्था को अत्यन्त पुष्ट और अटल बना देता है।[1] यह शाश्वत और सावभौम प्रभाव प्रसाद क्षमता ही काव्य का चरम मूल्य है और कवियश प्रार्थी को इसकी कामना करनी चाहिए

"यदि हम यह प्रश्न भी और जोड ल तो प्रोत्साहन और भी अधिक होगा 'मेरी इस प्रकार की रचनाओ को आनेवाला प्रत्येक युग किस प्रकार से ग्रहण करेगा? किन्तु यदि कोई व्यक्ति ऐसी बात करने के विचार तक से घबराता हो जो स्वय उसके जीवन और युग की सीमा का अतिक्रमण कर सके, तो उसकी धारणाओ को निश्चय ही अपूण दृष्टिहीन और एक प्रकार से समय स पूव उत्पन्न मानना चाहिए क्योकि उनम किसी भी भाति ऐसी परिपूणता नही होगी जो भावी युगो म कीर्ति प्रसार क लिए आवश्यक है।[2]

सहृदयता—

यहा यह शका हो सकती है कि सावभौम का अथ सावजनिक तो नही है।

१ काव्य में उदात्त तत्त्व, पृष्ठ ५३।
२ वही, पृष्ठ ६१।

किन्तु इस विषय में लोंगिनुस का मत स्पष्ट है वे निश्चित रूप से काव्य को ऐसे व्यक्तियों की वस्तु मानते हैं जो अपनी शिक्षा-संस्कृति के कारण उसके अधिकारी हैं। उनका दृढ विश्वास है कि काव्य की परख 'सुदीर्घ अनुभव के बाद ही हो सकती है।'"[१] अर्थात वे काव्यास्वाद और काव्यालोचन के लिए शास्त्रीय ग्रंथ में *'सहृदयता' (परिष्कृत रुचि और शिक्षित संस्कार) को ही प्रमाण मानते हैं कोरी भावुकता या जन्मजात रसिकता मात्र को नहीं। अत सार्वभौम और सार्वकालिक का अर्थ है सभी देशों और युगों के सहृदय समाज को प्रभावित करने वाला।*

अमर काव्य की प्रेरणा—

इस सिद्धि के या तो अनेक मार्ग हैं किन्तु एक सीधा मार्ग है पूर्ववर्ती महाकवियों और लेखकों के अनुकरण और स्पर्धा का —दूसरे शब्दों में अमर काव्यादर्शों के अनुसरण का। लोंगिनुस ने इसपर बड़ा बल दिया है और ऐटकिन्स ने उन्हें इसीके आधार पर आभिजात्यवादी घोषित कर दिया है। वास्तव में प्राचीन काव्यादर्शों के प्रति लोंगिनुस का भाव ठीक उसी प्रकार का नहीं है जैसाकि परवर्ती काव्यशास्त्रवादियों का था। अनुकरण शब्द का प्रयोग उन्होंने किया अवश्य है पर रूढ़ अर्थ में नहीं उनका अभिप्राय प्रेरणा ग्रहण का ही है। 'स्पर्धा' शब्द इसीका द्योतक है—और उन्होंने स्पष्ट लिखा है 'मेरे मित्र, यह ऐसा उद्देश्य है जिसके प्रति हमें निरन्तर प्रयत्नशील रहना चाहिए क्योंकि बहुत से व्यक्ति दूसरों की आत्मा से इतने प्रभावित हो जाते हैं मानो उन्हें स्वयं प्रेरणा मिली हो।'[२] अत यह प्रभाव वस्तुगत न होकर आत्मगत ही है—अर्थात लोंगिनुस का अभिप्राय यह है कि उदीयमान लेखक अमर काव्यों के साथ जीवन्त सम्पर्क स्थापित करें जिससे उन अमर कवियों की प्रतिभा की ज्योति से उसकी अपनी प्रतिभा की दिव्य ज्योति जगमगा उठे

'क्योंकि ये महापुरुष हमारे सामने प्रकट होकर हमारे उत्साह को प्रज्वलित कर किसी गूढ़ रीति से हमारे मस्तिष्क को औदात्य के उन स्तरों तक ले जाएँगे जो हमारे भीतर बिम्बित हैं।'[३]

आप देखें कि उपर्युक्त उद्धरण में काव्य के उपकरणों का—कल्पना चित्र भाव बिम्ब शब्दावली आदि का ग्रहण अभीष्ट नहीं है लोंगिनुस तो दीपक से दीपक जलाने की बात करते हैं। उनके मतानुसार उदीयमान कवि को काव्य रचना

१ काव्य में उदात्त तत्त्व, पृष्ठ ५१।
२ वही, पृष्ठ १६। ३ वही, पृष्ठ ६८।

के समय यह कल्पना करनी चाहिए कि हामर और देमोस्थेनेस जसे महारथियो की आत्माए निर्णायक रूप म हमारी कृति का न्याय विचार कर रही हैं। निश्चय ही ये सब तथ्य अमर कवियों के साथ आत्मिक सम्बन्ध की ही प्रस्थापना करते हैं रूढ अनुकरण की नही। यह प्रस्थापना सत्रहवी अठारहवी शती के नव्यशास्त्रवादियो की धारणा से भिन्न तो है ही—आत्मतत्त्व की दृष्टि से मथ्यू आर्नल्ड की मान्यता से भी एक कदम आगे है।

मूल्याकन

पाश्चात्य काव्यशास्त्र म लोगिनुस की कीर्ति अमर है। प्राचीन काव्यशास्त्र म अर्थात यूनानी रोमी आचार्यों मे अरस्तू के बाद प्राय उन्हीका नाम आता है। लागिनुस के आलोचको म उनके मूल दृष्टिकोण को लेकर तीव्र मतभेद है स्काट जेम्स ने जहा उन्हें पहला रोमानी या स्वच्छन्दतावादी आलोचक कहा है वहा ऐटकिन्स उन्ह अतिम अभिजात्यवादी आलोचका की परम्परा म स्थान देते हैं।[1] सामान्यत इस विवाद म पडना अधिक लाभप्रद नही है क्योकि पश्चिमी आलोचना शास्त्र के इन दोना शब्दो का अर्थ सवथा स्पष्ट और निश्चित नही है। फिर भी लोगिनुस के उचित मूल्याकन के लिए उनके दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण आवश्यक है। प्रस्तुत निबध के अध्ययन से यह निर्विवाद है कि लोगिनुस के विवेचन म वस्तु तत्त्व की अपेक्षा आत्मतत्त्व की प्रधानता है। यद्यपि उन्होने बड परिश्रम के साथ उदात्त की कला का विश्लेषण किया है और इसकी 'साधना' का भी उचित विधान किया है फिर भी उनके सम्पूर्ण सिद्धान्त प्रतिपादन म आत्मतत्त्व का स्थान ही प्रमुख रहा है। प्रतिभा का प्राथमिक महत्त्व, काव्य की सजना मे अत प्रेरणा का प्राधान्य, काव्य का आध्यात्मिक आधार, काव्य प्रयोजन के रूप म आत्मा के उत्कर्ष पर बल, शैली के विभिन्न तत्त्वा का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आदि तथ्य इस मत की पुष्टि के लिए पर्याप्त प्रमाण हैं। प्राचीन अमर काव्य के प्रति उनके मन मे अगाध श्रद्धा थी—उदीयमान कवि के लिए उन्होने अत्यत स्पष्ट शब्दो म अमर काव्यादर्श को ग्रहण करने की व्यवस्था दी है किन्तु जसाकि मैंने अभी सिद्ध किया है उनका बल प्रेरणाग्रहण पर ही अधिक रहा है जिस आवेग के साथ उन्होंने अमर कविया की आत्मा के साथ जीवन्त सम्पर्क स्थापित करने का आग्रह किया है वह परम्परा वाद के अन्तगत नहीं आ सकता। यह तो प्राचीन के प्रति रोमानी दृष्टिकोण का ही द्योतक है जिसे प्रत्येक युग के स्वच्छन्दतावादी कवि बडे उच्छ्वास के साथ व्यक्त

१ देखिए, दि मेकिंग ऑव लिटरेचर पृष्ठ ८०, और लिटरेरी क्रिटिसिज्म इन एण्टिक्विटी, पृष्ठ २५१।

करते रहे हैं। अतः यह स्वीकार करते हुए भी कि प्रस्तुत निबंध का मुख्य प्रतिपाद्य उदात्त शैली का विवेचन है, लांगिनुस के मूलभूत दृष्टिकोण के विषय में तो स्काट जेम्स का ही मत मान्य रहेगा। प्लेटो के आत्मवाद से प्रेरित लांगिनुस रोमानी (स्वच्छन्दतावादी) आलोचना-परम्परा के पहले आचार्य हैं, इसमें संदेह के लिए विशेष अवकाश नहीं है। इस प्रकार उनका दृष्टिकोण अरस्तू के दृष्टिकोण से भिन्न है। जैसा कि ऐटकिन्स ने लिखा है अरस्तू के शांत स्थिर बुद्धिवाद और उसपर आश्रित वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण से भिन्न लांगिनुस का दृष्टिकोण आत्मनिष्ठ, उच्छवास पूर्ण और कल्पना प्रधान है। सब मिलाकर तो, अरस्तू से उनकी क्या तुलना? अरस्तू का दृष्टिकोण अधिक विशद और व्यापक है। उनकी तर्क-पद्धति अधिक पूर्ण एवं विवेक-पुष्ट है और आधार कहीं अधिक सर्वांगीण तथा सुदृढ़ है। लांगिनुस का विवेचन उच्छवासपूर्ण और मौलिक होते हुए भी उसकी तुलना में एकांगी और अपूर्ण है। किन्तु अरस्तू से वे एक बात में आगे हैं: अरस्तू द्वारा प्रतिपादित काव्यानन्द जहाँ चित्त के विशद रूप होने के कारण अभावात्मक ही रह जाता है, वहाँ लोंगिनुस द्वारा निरूपित काव्यानन्द आत्मा के उल्लास या उत्कर्ष रूप होने के कारण भावात्मक है, और इस दृष्टि से वह भारतीय रस सिद्धांत के अधिक निकट है।

परन्तु लांगिनुस का सिद्धांत पूर्ण नहीं है। विभाव पक्ष में उदात्त की महत्ता का प्रतिपादन कर और भाव-पक्ष में मन की ऊर्जा एवं आत्मा के उत्कर्ष की महत्त्व प्रतिष्ठा कर उन्होंने काव्य में प्रबल तत्त्वों की ओर आलोचक का ध्यान आकृष्ट किया इसमें संदेह नहीं, किन्तु इस प्रकार पूरा बल उदात्त और ऊर्जा पर ही दे देने से जीवन तथा काव्य के अन्य पक्ष—जैसे मधुर और शांत—उपेक्षित हो गए। जीवन और काव्य का सर्वांग ग्रहण न होने से लोंगिनुस का 'उदात्त' सिद्धांत अपने में पूर्ण नहीं माना जा सकता। इसके आधार पर मिल्टन, भारवि, मधुसूदन दत्त आदि के साथ आसानी से पक्षपात हो सकता है और कीट्स, कालिदास, विद्यापति तथा पंत, महादेवी के साथ अन्याय। लोंगिनुस ने शोक, दया और भय को इसी तर्क से हीनतर भाव माना है, मानो प्राणों की द्रुति का कोई मूल्य ही न हो! चित्त की विभिन्न दशाओं की आनन्दमय परिणति की परिकल्पना से युक्त भारतीय रस सिद्धान्त की पूर्णता इसमें कहाँ?

फिर भी कुतूहल, शिक्षा और रंजन से आगे आत्मा के उत्कर्ष पर बल देकर और काव्य के आत्मिक तत्त्वों को उभारकर उन्होंने आलोचना की उस अंतरंग पद्धति का प्रवर्तन किया जिसके द्वारा काव्य की आत्मा का साक्षात्कार सम्भव हो सका।—और, इस दृष्टि से उनका स्थान सबसे पृथक और योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

काव्य में उदात्त तत्त्व

[अनुवाद]

डॉ० नगेन्द्र
श्री नेमिचन्द्र जैन

काव्य मे उदात्त तत्त्व

(१)

प्रिय पोस्तुमिउस तेरेन्तिम्रानुस[१], तुम्ह स्मरण होगा कि कैकिलिउस[२] का औदात्य विषयक प्रबन्ध जब हम लोगो ने साथ साथ पढा था ता हमे लगा था कि सम्पूर्ण विषय की गरिमा को देखते हुए उसका स्तर बहुत नीचा है, और आधारभूत तत्त्वो की पकड तो उसमे बिलकुल ही नही है। इसलिए यह अनुभव होता था कि उससे पाठको को बहुत कम सहायता मिलती है, जो प्रत्येक लेखक का प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए। किसी भी व्यवस्थित प्रबन्ध मे दो बात आवश्यक हैं एक तो लेखक को यह बताना चाहिए कि विवेच्य विषय क्या है। दूसरे, और वास्तव मे यह बात अधिक महत्त्वपूर्ण ह, उसे यह निर्देश करना चाहिए कि किस पद्धति द्वारा हम अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। अब कैकिलिउस असरय उदाहरणो के द्वारा हमे यह बताने का प्रयत्न करता है कि 'उदात्त' का स्वरूप क्या है, मानो हम इतना भी न जानते हो। किन्तु, आश्चय है, उसने इस बात का विवेचन, कि हम अपनी स्वाभाविक क्षमता को औदात्य के किसी निश्चित स्तर तक किस प्रकार उन्नमित कर सकते हैं, अनावश्यक समझकर छोड दिया है। वैसे तो हमे दोष दर्शन की अपेक्षा उसकी सुन्दर सूझ और उत्साह की प्रशसा ही करनी चाहिए लेकिन चूकि तुमने अपने विशेष परितोष के लिए मुझसे भी 'उदात्त' के विषय म एक सक्षिप्त निबन्ध लिखने का अनुरोध किया है, इसलिए

पहले इस बात पर विचार कर लिया जाए कि प्रस्तुत विषय से सबद्ध मेरी धारणाओ का सावजनिक कायकर्ताओ के लिए कोई उपयोग है भी या नही। मेरे मित्र ! तुमको भी अपने स्वभाव और औचित्य के अनुकूल सत्य की कसौटी पर प्रत्येक तथ्य की सम्यक परीक्षा करने म मेरे साथ सहयोग करना होगा। किसीने ठीक ही कहा है कि दो बातो मे हम देवताओ के समतुल्य हैं—उदारता मे और सत्य-प्रियता मे।

तुम जैसे साहित्य ममज्ञ व्यक्ति को पत्र लिखते समय इस विषय मे कोई लम्बी चौडी भूमिका बाधने की आवश्यकता नही रह जाती कि औदात्य अभिव्यक्ति की विशिष्टता और उत्कृष्टता का नाम है और केवल इसीके आधार पर श्रेष्ठ कवियो और लेखको ने अपनी प्रतिष्ठा एव अमर यश का अजन किया है। उदात्त भाषा का प्रभाव श्रोता के मन पर प्रत्यय के रूप मे नही वरन् भावोद्रेक के रूप म पडता है। गरिमामयी वाणी अपनी अभिभाव क्षमता के कारण अनुनय* तथा परितोषकारी वाणी की अपेक्षा सदैव और सभी प्रकार से अधिक समथ होती है। प्राय अपने अनुनय को तो हम नियन्त्रित कर सकते हैं, किन्तु उदात्त का प्रभाव अत्यन्त प्रबल एव दुर्निवार होता है और प्रत्येक श्रोता को भावाक्रान्त कर देता है। इसी प्रकार निर्माण-कौशल और उचित अनुक्रम एव वस्तु विन्यास किसी एक या दो गुणो से नही वरन् समस्त रचना विधान के फलस्वरूप प्रयत्न पूवक प्राप्त होते हैं, जबकि उदात्त तत्त्व उपयुक्त क्षण म बिजली की भाति कौंध समस्त विषय वस्तु को छिन्न भिन्न करता हुआ वक्ता की शक्ति के सम्पूण वभव को एक ही बार म उजागर कर देता है। किन्तु इस प्रसग म इतना ही पर्याप्त है क्योकि मैं जानता हू कि ये तथा इसी प्रकार के अन्य विचार तो तुम स्वय ही अपने अनुभव से प्रस्तुत कर सकते हो।

* परसुएशन।

(२)

सबसे पहले तो हम यह प्रश्न उठाना चाहिए कि उदात्त अथवा ऊर्जित की कला जसी कोई वस्तु है भी या नही। कुछ लोगो का मत है कि जो ऐसे विषयो को कला के अनुशासन के अन्तगत लाना चाहते हैं, वे पूणत भ्रम म हैं। एक विचारक का कहना है कि उदात्त प्रवत्ति तो नैसर्गिक होती है और शिक्षा द्वारा उपलब्ध नही होती प्रकृति ही ऐसी कला है जो उसे अपनी परिधि मे समेट सकती है। ऐसे लोगो का विचार है कि प्रकृति की रचनाए कला के नियमो द्वारा म्लान होकर निष्कृष्टतर और पूणत दुबल हो जाती हैं, पर मेरा विचार ह कि यदि इस बात पर ध्यान दिया जाए कि प्रकृति की कायविधि नियमत आवेग और औदाय के विषय म उन्मुक्त एव स्वतन्त्र होते हुए भी मनमानी और पूणत व्यवस्था विहीन नही है, तो वस्तुस्थिति कुछ भिन्न ही जान पडेगी। साथ ही, प्रकृति सवदा ही मौलिक और प्राणभूत आधार-तत्त्व के रूप म होती है, किन्तु व्यवस्था द्वारा सीमाए तथा उपयुक्त अवसर निर्धारित किए जा सकते हैं और उपयोग एव व्यवहार के लिए समुचित नियम प्राप्त हो सकते ह। इसके अतिरिक्त उदात्त की अभिव्यक्ति के लिए उस समय आशका अधिक रहती है जब वह ज्ञान के निर्देशन के बिना मनमाने ढग से होने लगे—जब उसे अस्थिर और निराधार रूप मे प्रकट होने दिया जाए, जब उसे निपट वेग और ज्ञानहीन औद्धत्य के हाथो मे छोड दिया जाए। यह सही है कि प्राय उसको प्रेरणा की आवश्यकता होती है, किन्तु यह भी सही है कि उसे प्राय नियन्त्रण की भी आवश्यकता होती ह। देमोस्थेनेस[३] ने साधारण मानव-जीवन के विषय मे यह विचार प्रकट किया है कि सौभाग्य सबसे बडा वरदान ह अवश्य, किन्तु सदबुद्धि—जिसका स्थान दूसरा है—महत्त्व मे किसी भी प्रकार कम नही है क्योकि उसके अभाव मे तो अनिवाय रूप से सौभाग्य का भी विनाश हो जाता ह। इस सिद्धान्त को हम

काव्य-भाषा के क्षेत्र मे भी लागू कर सकते हैं जहा सौभाग्य का स्थान प्रकृति को प्राप्त है और सदबुद्धि का स्थान कला को। सबसे महत्त्व-पूर्ण बात स्मरण रखने की यह है कि अभिव्यक्ति के कुछ तत्त्व प्रकृति के ही आश्रित हैं—इस बात का ज्ञान हम कला के अतिरिक्त और कही से प्राप्त नही कर सकते । मेरा कथन यही है कि प्रस्तुत विषय के जिज्ञासुओ की आलोचना करनेवाले यदि इन सब बातो पर विचार करें तो, मुझे लगता है कि, वे इस विवेचन को अनावश्यक अथवा निरर्थक नही समझेंगे

(३)

शात करते हैं वे भट्टी का दूर दूर तक फैला ऐश्वर्य आलोक[1]

एक ज्वाल माला जिसे मैं जलधार की भाति ऊपर उछाल दूगा
मैं जला दूगा छत को जलाकर राख कर दूगा ।—
नही अब मेरे गीतो के स्वरो म भव्यता नही है।

ऐसी शब्दावली—'ज्वाल मालाए', 'गगनघोषी उद्गार', बोरे-अस को 'वशीवादक' के रूप मे प्रस्तुत करना तथा ऐसी ही अन्य सब बाते वास्तव मे त्रासद नही होती बल्कि उनमे एक प्रकार की मिथ्या त्रासद भावना पाई जाती है। भाव-तीव्रता से उत्पन्न होने की बजाय उनकी अभिव्यक्ति मलिन एव बिम्ब योजना अस्पष्ट है और सम्यक् परीक्षा करने पर धीरे धीरे यह प्रकट होने लगता है कि वे वास्तव मे भीषण नही वरन् निकृष्ट है। किन्तु त्रासदी मे भी, जो अपने स्वभाव से ही गरिमायुक्त और अतिशयोक्तिपरक होती है, रुचिविहीन वाक्स्फीति अक्षम्य है और मेरा अनुमान है कि साधा-रण तथ्य वर्णन के लिए तो वह और भी अनुकूल नही हो सकती। यही कारण है कि लियोन्तिनी का गोर्गिअस[४] जब क्सेरक्सेस[५] को 'ईरानवासियो का जेउस'[६] और गृद्धो को 'जीवितसमाधि' कहता है तो हम उसकी इस पद रचना की हसी उडाते है। यही बात

कल्लिस्थेनेस* की कुछ उक्तियो के विषय मे सत्य है जो उदात्त नही वरन अतिशयोक्तिपूर्ण हैं और उससे भी अधिक सत्य है क्लेइतारखुस[८] की भाषा के बारे म, क्योकि वह तो बहुत ही क्षुद्र है—साफोक्लेस[६] के शब्दो म, वह तो 'बासुरी नही, बल्कि भोपू' बजाने मे ही विश्वास करता है। इसी प्रवत्ति के अन्य उदाहरण अम्फिक्रतेस[१०], हेगेसिग्रस[११] और मत्रिस[१२] म भी मिल जाएगे, क्योकि प्राय जब ये लेखक ऐसा समझते हैं कि हम किसी अन्त प्रेरणा के वशीभूत होकर लिख रहे हैं, उस समय वस्तुत इनम सच्चे भावावेश का अभाव होता है और ये केवल शब्द क्रीडा म उलझे रहते हैं।

कुल मिलाकर लगता है कि वागाडम्बर से बचना विशेष रूप से कठिन है। इसका कारण यही है कि औदात्य कामी लेखक सदा क्षीणता और शुष्कता के आरोप से बचने की आतुरता मे, मानो किसी विचित्र प्राकृतिक नियम के कारण, दूसरे ही छोर पर पहुच जाते हैं। वे इस सिद्धा त सूत्र मे विश्वास करते जान पडते हैं कि "किसी महान प्रयास म असफलता कम से कम एक शानदार भूल तो है ही।" किन्तु शोथ चाहे शरीर का हो अथवा भाषा का वह सदा दोष ही माना जाएगा क्योकि वह अवास्तविक एव स्फीतिमय होता है और उसस अपने उद्देश्य के प्रतिकूल परिणाम की आशका रहती है। किसीने ठीक ही कहा है कि जलोदर रोग से पीडित मनुष्य की अपेक्षा अधिक शुष्कता और कही नही पाई जाती। वागाडम्बर मे जहा उदात्त की सीमा का अतिक्रमण करने की इच्छा रहती है, वहा बालेयता* नामक दोष उदात्त के एकदम विपरीत होता है—वह सवथा निकृष्ट और क्षुद्र वरन् सच पूछा जाए तो शली का सबसे जघन्य दोष है। तो फिर यह बालेयता आखिर है क्या? स्पष्ट ही यह दोष विद्या-जड व्यक्ति के विचारो मे निहित रहता है जिनका आरम्भ पाण्डित्यपूर्ण तुच्छता और अन्त निष्प्राण वाचालता मे होता

* प्यूरिलिटी।

है। लोग इस प्रकार की भूल तब करते हैं जब वे 'असामान्य', 'विस्तारपूर्ण' और इन सबसे अधिक 'आकर्षक' का अनुसंधान करते हुए अन्त में अनजाने ही झूठी शोभा और कृत्रिमता के चक्कर में पड़ जाते हैं। तीसरा और इसीसे बहुत कुछ सम्बद्ध आवेग विषयक दोष वह है जिसे थ्योदोरुस[13] भावाडम्बर* कहा करता था। इसका अर्थ है कि जहां किसी आवेग की आवश्यकता नहीं है वहां अवसर के अनुपयुक्त और खोखले आवेग का प्रदर्शन किया जाए अथवा जहां संयम की आवश्यकता है वहां असंयम दिखाई पड़े। क्योंकि प्रायः बहुत से मनुष्य मानो मदमत्त होकर ऐसे भाव प्रदर्शन में बहक जाते हैं जो विषय की प्रकृति से उत्पन्न न होकर सर्वथा वैयक्तिक और कलातिकर होता है। परिणामस्वरूप श्रोता प्रभावित नहीं होते और उन्हें इनका व्यवहार भद्दा जान पड़ता है। और, इसमें आश्चर्य भी क्या है, क्योंकि ऐसे वक्ता ही आपे से बाहर रहते हैं, उनके श्रोता नहीं। किन्तु आवेग के प्रश्न पर हम फिर बाद में अलग से विचार करेंगे।

(४)

दूसरा दोष जिसका हमने उल्लेख किया है शब्दाडम्बर है, इसके उदाहरण तिमएउस[14] में बहुत से मिल जाते हैं। तिमएउस साधारणतः काफी योग्य लेखक था, जिसकी रचनाओं से कभी कभी यह प्रकट होता है कि उदात्त शैली का प्रयोग उसकी सामर्थ्य के बाहर नहीं। वह विद्वान था और उसकी सूझ भी अच्छी थी, पर उसकी यह प्रवृत्ति थी कि दूसरों के दोषों की तो वह बहुत आलोचना करता था किन्तु स्वयं अपने दोष उसे दिखाई न पड़ते थे। निरन्तर नये नये विचारों की उद्भावना करने की प्रबल आकांक्षा के कारण वह प्रायः एकदम बचपन कर बैठता था। उसकी इस प्रवृत्ति के मैं एक दो

* पेरेनथ्युरसुम (परेनथ्युरसान—यूनानी भाषा)।

उदाहरण ही दूगा क्योकि बहुत से उदाहरण केकिलिउस पहले ही दे चुका है। सिकन्दर महान के कीर्ति गान मे वह लिखता है "सिकदर को समस्त एशिया पर विजय लाभ करने मे उतने भी वर्ष नही लगे जितने इसोक्रतेस[15] को फारस विरोधी युद्ध की प्रेरक प्रशस्ति रचने मे लगे।" मकदून के योद्धा की एक रीतिकार से यह तुलना सचमुच ही विचित्र है। यह कितना स्पष्ट है कि इस प्रकार विचार करने से लकेदेमोनिया वासी शक्ति मे इसोक्रतेस से कही हीनतर सिद्ध होगे, क्योकि उन्हे तो मस्सेने की विजय मे तीस वर्ष लगे जबकि इसोक्रतेस ने अपनी प्रशस्ति दस वर्ष मे ही रच डाली थी। अथवा सिसली मे बन्दीकृत अथेनियो के विषय मे उसके वर्णन पर ध्यान दीजिए "उन्हे दण्ड इसलिए मिला क्योकि उन्होने हर्मेस के प्रति अनाचार किया था तथा उसकी प्रतिमाओ को खण्डित किया था। और इस दण्ड का पूरा श्रेय मुख्यत हर्मोन के पुत्र हर्मोक्रतेस को था जिसके पिता अपमानित देवता की वश परम्परा मे उत्पन्न हुए थे।" प्रिय तेरेन्तिआनुस, मुझे तो आश्चर्य इस बात का है कि उसने अत्याचारी दिओन्यूसिअस के बारे मे यह नही लिखा "दिओन और हेराक्लेइदेस ने उसकी सत्ता इसलिए छीन ली क्योकि उसने ज़ेउस और हेराक्लेस के प्रति पाप किया था।" किन्तु तिमएउस को ही क्यो दोष दिया जाए जबकि क्सेनोफोन[16] और प्लतोन[17] (प्लेटो) जसे साहित्य-महारथी भी, जिन्होन स्वय सुकरात[18] से शिक्षा प्राप्त की थी, कभी-कभी ऐसे क्षुद्र वाग्विलास मे फसकर अपने प्रकृत रूप को भूल जाते हैं। क्सेनोफोन अपनी 'लकेदेमोनिया वासियो की राज-व्यवस्था' नामक पुस्तक मे लिखता है "उनकी आवाज़ सुनना सगमरमर की मूर्तियो की आवाज़ सुनने से भी अधिक कठिन है और उनका दृष्टि विक्षेप कास्य मूर्तियो के दृष्टि विक्षेप से भी अधिक दुष्कर है, उन्हे आप उनकी आखो की कुमारियो से भी अधिक लज्जावान समझेंगे।"

भागों की पुतलियों को 'लज्जावान कुमारी' कहना अल्किवतेस को भले ही शोभा देता, क्सेनोफोन को नहीं। हे भगवान, कैसी विचित्र बात है कि पूरे समुदाय की पुतलियों को लज्जावान मान लिया जाए, यद्यपि यह एक प्रचलित कहावत है कि मनुष्यों की निलज्जता का पता जितना उनकी आंखों से चलता है, उतना किसी अन्य वस्तु से नहीं। होमेरस'' ने लिखा है "कुत्ते की सी आंखोंवाले ओ मदान्ध व्यक्ति!" किन्तु तिमएउस ने इस वागाडम्बर को भी क्सेनोफोन से लिए नहीं छोड़ा, बल्कि उसपर ऐसे झपटा है मानो कोई छिपा हुआ खजाना मिल गया हो। अगथोक्लेस के बारे में यह कह चुकने के बाद कि वह किसी दूसरे की वाग्दत्ता अपनी एक रिश्ते की बहिन को विवाह समारोह के बीच में से ही अपहरण कर लाया था, वह पूछता है "जिसकी आंखों में कुमारियों के स्थान पर कुलटाएं न हों, उसे छोड़कर कौन ऐसा काम कर सकता है?" हां, और प्लतोन ने भी (जिसकी अभिव्यंजना साधारणतः इतनी दिव्य होती है), तख्ती के लिए यह लिखा है "वे मन्दिरों में सुरद्रुम* वाले स्मारक लिखकर सुरक्षित रखेंगे।"

और इसी प्रकार, "मगीलुस मैं स्पार्ता से सहमत हूं कि दीवारें छूते ही उन्हें पृथ्वी के गर्भ में पड़े रहने दिया जाए और कभी उठने की आज्ञा न दी जाए।" हेरादोतस* का यह कथन भी कि सुन्दरी स्त्रियां 'चक्षु दंश' होती हैं, कोई ज्यादा अच्छा नहीं है। किन्तु किसी हद तक इसको क्षमा किया जा सकता है, क्योंकि उसकी कथा में जो लोग इस विशेष शब्दावली का उपयोग करते हैं वे बर्बर हैं और शराब पीकर उन्मत्त हैं। फिर भी इस प्रकार के चरित्रों के मुख से भी ऐसे शब्द कहलाना उचित नहीं जिनके कारण लेखक को भावी पीढ़ियों की दृष्टि में अशोभन और तुच्छ शब्दाडम्बर के दोष का भागी बनना पड़े।

---

* सायप्रस

(५)

साहित्य मे इस प्रकार की कुरूप और परोपजीवी प्रवृत्तिया केवल एक ही कारण से उत्पन्न होती हैं और वह है विचारो की अभिव्यक्ति मे नवीनता की खोज, जिसके पीछे आजकल लोग बुरी तरह पागल हो उठे हैं। हमारे अधिकाश दोष और गुण प्राय एक ही प्रकार के स्रोत से उत्पन्न होते हैं। इसलिए एक ओर जहा अभिव्यक्ति के अलकार, उदात्त के स्पश और मनोहारी काव्य प्रसाधन सप्रभाव रचना के लिए अनुकूल पडते हैं, वहा दूसरी ओर यही सब उपकरण केवल सफलता के ही नही, वरन विफलता के भी मूल तत्त्व और आधार सिद्ध होते है। कुछ इसी प्रकार की बात शब्द रूपो, अतिशयोक्ति तथा बहुवचन के प्रयोग के बारे मे भी सही ह और आगे चलकर अलग से हम इनके सम्भावित दोषो पर विचार करेंगे। इस समय ऐसे उपायो की शोध और निर्देश आवश्यक है कि जिनके द्वारा हम उदात्त के सहवर्ती दोषो से बच सकें।

(६)

मित्रवर, इसका सबसे अच्छा उपाय यह होगा कि हम पहले वास्तविक उदात्त के स्वरूप को स्पष्टत जान और समझ लें। किन्तु यह काय बहुत ही श्रमसाध्य है, क्योकि शलो की परख सुदीघ अनुभव के बाद ही हो सकती है। तो भी यदि इन विषयो मे मुझे कुछ शिक्षा देनी ही हो तो मैं कहूगा कि निम्नलिखित कुछेक बातो पर ध्यान देने से इन विषयो मे विवेक-बुद्धि प्राप्त करना शायद असम्भव नही ह।

(७)

यह तो तुम जानते ही हो कि जो बात मनुष्य के साधारण जीवन के विषय मे सही है, वही 'उदात्त' के विषय मे भी है। जीवन म ऐसी कोई चीज बडी नही मानी जा सकती जिससे घृणा करना

वडी बात समझी जाती हो। उदाहरण के लिए सम्पत्ति, पदविया, विशेष सम्मान, राजपाट और ऐसी ही अन्य वस्तुओ को, जिनमे बाहरी तडक-भडक और दिखावा काफी रहता है, कोई भी समझदार व्यक्ति चरम वरदान नही मानेगा, क्योकि इन सब वस्तुओ का तिरस्कार भी कम अच्छा नही समझा जाता। कम से कम इतना तो निर्विवाद ही है कि जो लोग इन वस्तुओ को प्राप्त करने की सामर्थ्य होने पर भी उनका तिरस्कार कर सकते हैं, उन्ह अपेक्षाकृत अधिक सम्मान मिलता है। इसी प्रकार हमको कविताओ और गद्य रचनाओ के अतगत उदात्त तत्त्व के विषय मे भी यह विचार करना चाहिए कि तथाकथित उदाहरण केवल ऊपर से ही तो उदात्त नही दिखाई पडते और उनमे ऐसे निरथक तत्त्व तो कही विद्यमान नही हैं जो विश्लेषण करने पर मिथ्याडम्बर मात्र सिद्ध हो और उदारचेता व्यक्ति प्रशसा की अपेक्षा जिनकी नि दा ही अधिक करें। क्योकि सच्चे औदात्य से हमारी आत्मा जसे अपने आप ही ऊपर उठ कर गव से उच्चाकाश मे विचरण करने लगती है तथा हप और उल्लास से परिपूण हो उठती है मानो जो कुछ उसने सुना है वह स्वय उसीकी अपनी कृति हो। इसलिए जब किसी रचना के बार बार सुनने पर भी एक चतुर और साहित्यविज्ञ व्यक्ति की आत्मा उच्च विचारो की ओर उन्मुख न हो उठे तथा जितनी शब्दो से प्रकट होती है उससे अधिक विचारोत्तेजक सामग्री प्रस्तुत न कर सके, वरन् पूरी तरह कसौटी पर कसने से उस रचना के प्रति सम्मान और कम हो जाए तो उसमे सच्ची उदारता का अस्तित्व नही माना जा सकता, क्योकि वह एक बार सुनने के बाद टिक नही पाती। वास्तव मे महान रचना वही है जो बार बार कसौटी पर कसी जाने पर भी सदा खरी उतरे, जिससे प्रभावित न होना कठिन ही नही लगभग असम्भव हो जाए और जिसकी स्मृति इतनी प्रबल और गहरी हो कि मिटाए न मिटे। साधारणत औदात्य के उन उदाहरणो

को ही श्रेष्ठ और सच्चा मानना चाहिए जो सब व्यक्तियो को सवदा आनन्द दे सकें, क्योकि ज्व विभिन्न रुचियो, वृत्तियो, महत्त्वाकाक्षाग्रा, अवस्थाग्रो और भाषाग्रो के व्यक्तियो का किसी एक ही विषय पर एका सा मत हो, तो वह निणय, जो एक प्रकार से अनेक परस्पर-विपरीत तत्त्वो के समन्वय से प्राप्त होता है आलोच्य वस्तु के प्रति हमारी आस्था को अत्यन्त पुष्ट और अटल बना देता है।

(८)

यह कहा जा सकता है कि उदात्त भाषा के पाच प्रमुख उद्गम-स्रोत हैं। इन पाच विभिन्न गुणो के नीचे एक प्रकार से एक सामान्य आधार है जो हर स्थिति मे अनिवार्य है। वह आधार है वाक् प्रतिभा। इन पाचो मे प्रथम और सवप्रमुख है महान धारणाग्रो की क्षमता, जसाकि हम क्सेनोफान के विषय मे चर्चा करते समय अन्यत्र कह चुके हैं। दूसरा है उद्दाम और प्रेरणा प्रसूत आवेग। औदात्त्य के ये दो अवयव लगभग जन्मजात होते हैं, बाकी तीन अशत कला की उपज हैं। तीसरा अवयव है अलकारो की समुचित योजना, जिसके अन्तगत भाव और अभिव्यक्ति दोनो ही से सवधित अलकार आ जाते हैं। अगला अवयव है उत्कृष्ट भाषा, जिसके अन्तगत शब्द चयन, रूपकादि का प्रयोग और भाषा की सज्जा समृद्धि आदि गुण आ जाते हैं। औदात्त्य का पाचवा कारण जो उचित ही पिछले चारो गुणो की परिणति रूप है, वह है गरिमामय एव ऊर्जित रचना विधान। अब आओ, इस बात पर विचार करें कि इनमे से प्रत्येक से क्या अभिप्राय है। यहा भूमिका के रूप म केवल एक बात का उल्लेख कर देना आवश्यक है कि कैकिलिउस ने इन पाचो मे से कुछेक अवयवो को—उदाहरण के लिए आवेग को—छोड दिया है। यदि उसने ऐसा इस आधार पर किया है कि औदात्त्य और आवेग मे कोई अन्तर नही है तथा वे स्वभाव से ही एक और अविभाज्य हैं तो निस्सन्देह वह भ्रम मे है। क्योकि ऐसे भी आवेग होते हैं जो

औदात्य से बहुत दूर हैं और जो निम्नतर कोटि के हैं, जसे दया, शोक, भय आदि। दूसरी ओर 'उदात्त' के ऐसे अनेक उदाहरण भी मिलते हैं जिनका आवेग मे कोई सम्ब ध नही, जसे अलोअदए के सम्बध मे होमर के ओजस्वी (साहसपूण) शब्द

> और हा उन्होने क्रोधावेश मे आकर ओल्युम्पुस (आलिम्पस) के
> ऊचे शिखर पर ओस्सा को स्थापित कर दिया,
> और फिर उसके ऊपर वनाच्छादित पेलिओन (पीलियन) को—
> जहा से वे आकाश पर चढ सकें।

और फिर इसीके बाद ये शब्द जो और भी प्रबल हैं

> हा, और उनका यह प्रबल काय।

वक्ताओ में भी—प्रशस्तियो और औपचारिक तथा प्रासगिक भाषणो मे—प्राय गरिमा और उदात्तता के ऐसे उदाहरण मिल जाते हैं जिनमे अधिकतर आवेग का अभाव होता है। यही कारण है कि आवेगपूण वक्ता सबसे निकृष्ट प्रशस्तिकार होते हैं और उधर प्रवीण प्रशस्तिकारो मे आवेग की अत्य त यूनता होती है। दूसरी ओर, यदि कैकिलिउस का विचार यह था कि आवेग उदात्त की सृष्टि मे कभी सहायक नही होता और इसीलिए उसने उसका उल्लेख करना उचित नही समझा, तब तो उसकी धारणा सवथा भ्रान्त है। *मैं यह बात पूरे विश्वास के साथ कह सकता हू कि* जो आवेग उन्मद उत्साह के उद्दाम वेग से फूट पडता है और एक प्रकार से वक्ता के शब्दो को विक्षेप से परिपूण कर देता है, उसके यथा-स्थान व्यक्त होने से स्वर मे जैसा औदात्य आता है, अन्यत्र वैसा दुलभ है।

(९)

उपर्युक्त उपकरणो मे से प्रथम अर्थात मन की ऊर्जा पाचो मे सवप्रमुख है। अतएव, इसके लिए भी हमे, यद्यपि यह गुण अर्जित न होकर स्वभावजात होता है, यथासम्भव अपनी आत्मा मे उदात्त

विचारों का पोषण करना चाहिए और उसे भव्य प्रेरणाओं से परिपूरित रखना चाहिए। तुम पूछोगे कि यह किस प्रकार किया जा सकता है ? एक और स्थान पर मैंने लिखा है "औदात्य महान आत्मा की प्रतिध्वनि है।" यही कारण है कि केवल भाव भी अपने-आप, तथा शब्दों के अभाव में भी, कभी कभी भावक आत्मा की महानता का द्योतक होने के कारण प्रशस्य हो जाता है। इसी कारण पाताल लोक में अजक्स (अऐक्स)[21] का मौन, शब्दों की अपेक्षा, कहीं अधिक महान और उदात्त है। तो फिर सबसे पहले यह नितान्त आवश्यक है कि इस ऊर्जा के उद्गम का निर्देश किया जाए—अर्थात सच्चे वाग्मी को निश्चय ही क्षुद्र और हीनतर भावों से मुक्त होना चाहिए। क्योंकि यह सम्भव नहीं है कि जीवन भर क्षुद्र उद्देश्यों तथा विचारों में ग्रस्त व्यक्ति कोई स्तुत्य एवं अमर रचना कर सके। महान शब्द उन्हींके मुख से निःसृत होते हैं जिनके विचार गम्भीर और गहन हों। यही कारण है कि मनस्वियों को भव्य वाणी सहज ही प्राप्त होती है। तुम्हें स्मरण होगा कि सिकन्दर ने परमेनियो को इस प्रकार उत्तर दिया था

"जहां तक मेरा प्रश्न है, मैं पूरी तरह सन्तुष्ट था।" कितना आकाश पाताल का अन्तर है और इसे न केवल होमेरस की कला का बल्कि ऐरिस (चण्डी) के वर्णन का मानदण्ड माना जा सकता है। इसके विपरीत, 'ढाल'[22] नामक रचना यदि हेसिओद[23] की ही मानी जाए तो उसका निम्नलिखित शोकवर्णन होमेरस (होमर) के वर्णन से कितना भिन्न है

उसके नथुनों से झाग गिर रहा था।

यहां जो बिम्ब व्यंजित किया गया है वह भय नहीं जुगुप्सा उत्पन्न करता है। अब होमेरस (होमर) द्वारा अंकित दिव्य शक्तियों के चित्र की तुलना इससे कीजिए

> और जितनी दूर, सागर तल के कुहासे म से कोई देख सके,
> चट्टान पर आसीन, सुरा श्यामल अथाह सागर की ओर दृष्टि गडाए,
> उतनी दूर तक मृत्युजयी के उच्चघोष अश्व एक छलाग म पहुच जाते हैं।

वह जगत् के अनन्त विस्तार को उनकी छलाग का मानदण्ड बनाता है। यह उदात्त वणन इतना प्रबल है कि अचानक ही हम कह उठते हैं "दिव्य अश्व यदि लगातार दो बार इस प्रकार झपटे तो वे ससार की सीमा का अतिक्रमण कर जाएगे।" देवताओ के युद्ध वणन मे भी बिम्ब योजना कितनी भव्य है

> दूर-दूर तक विस्तत आकाश म और ओल्युम्पुस के चारो ओर उसका वज्र-तूय गूज उठा।
> और छायालोक का राजा उसे सुनकर कापने लगा।
> और वह अपने सिंहासन से उछल पडा, अपने अन्तर के भय स चीखने लगा।
> कि कही पथ्वी को कपानेवाला पोसेइदोन[२४] उसीके ऊपर धरती को न विदीण कर डाले—
> और अमरो तथा मर्त्यों के सामने प्रकट हो जाए वे भीषण आवास व विकराल तथा कदाकार महल देवताओ के घणापात्र !

मित्र, अब तुम यह देखो कि यहा किस प्रकार धरती अपने आधार से विच्छिन्न कर दी गई है। स्वय पाताललोक को खोलकर रख दिया गया है, सारा ससार उलट गया ह, खड खड कर दिया गया ह और सभी पदाथ एकसाथ—स्वग और नरक, मत्य और अमत्य—उस सग्राम के सघष और विपत्तियो मे भाग लेते जान पडते हैं।

किन्तु, यद्यपि ये वस्तुए भय उत्पन्न करनेवाली ह, फिर भी एक अन्य दृष्टि से यदि उन्ह रूपक न माना जाए तो, वे सवदा अधमपूण हैं और हमारी औचित्य भावना पर आघात करती हैं। मुझे लगता है कि होमेरस (होमर) ने देवताओ की विपत्ति, उनके पारस्परिक कलह, प्रतिशोध, शोक, बन्धन तथा अन्य नानाविध आवेगो को कथाओ मे, जहा तक उसकी सामथ्य मे था, 'त्रिय्र (ट्रॉय) के

घेरे[२५] से सम्बद्ध मनुष्यो को देवता बना दिया है और देवताओ को मनुष्य। पर जहा हम मर्त्यों के लिए, दुर्भाग्य का प्रकोप होने पर, मत्यु के द्वारा अपने कष्टो से छुटकारा पाने का विधान है वहा होमेरस (होमर) ने देवताओ को न केवल अपने प्रकृत रूप मे वरन् दुर्भाग्य मे भी अमर चित्रित किया है। देवताओ के सग्राम सम्बन्धी प्रसगो की अपेक्षा वे स्थल कही अधिक श्रेष्ठ हैं जिनमे वास्तविक दिव्य स्वभाव का, उसके विशुद्ध, महान तथा अकलुष रूप मे, चित्रण किया गया है। उदाहरण के लिए पोसेइदोन सम्बन्धी एक अश को लीजिए जिसके विषय मे हमसे पहले और भी बहुत लोग विचार कर चुके है

उसकी सुदूर विस्तृत पवतमालाए, वनो के वक्ष, शिखर और त्रिआई
(ट्रायवासी) योद्धाओ का नगर और अखया[२६] के पोतो की पक्तिया
स्तब्ध होकर काप उठी,
पोसेइदान के आगे बढने के साथ हा—उसके अमर चरणो के तले।
फिर लहरो के ऊपर भी वह बढ चला देवता के आगे
समुद्री जन्तु चारो ओर गह्वरो से निकलकर ऊपर उछल आए
क्योकि वे अपने राजा को पहचानत थे
समुद्र हर्षातिरेक म बीच से फट गया, और रथ के अश्व आगे उड चले।

इसी भाति यहूदियो के विधाता ने, जो कोई साधारण व्यक्ति न था, ईश्वरत्व की शक्ति की समुचित धारणा स्थिर और व्यक्त करने के बाद, अपनी धम-सहिता के प्रारम्भ म लिखा था, "ईश्वर ने कहा"—क्या कहा ? "आलोक प्रकट हो जाए, और आलोक प्रकट हो गया, भूमि प्रकट हो जाए और भूमि प्रकट हो गई।" मित्र, यदि मैं होमेरस (होमर) से एक और उद्धरण दू तो (आशा है) शायद तुम ऊबोगे नही। यह उद्धरण मनुष्यो से सम्बद्ध है और इससे यह प्रकट होता है कि होमेरस (होमर) किस प्रकार अपने नायको के उदात्त कार्यों के साथ स्वभावत ही तादात्म्य कर लेता था। उसके काव्य मे यूनानियो के युद्ध पर अचानक ही कोहरे और घोर रात्रि का

आवरण पड जाता है। उस समय अजक्स को कुछ भी नही सूझता और वह पुकार उठता है "जेउस (जेफ्स), हे पिता, अखया के पुत्रो की तू इस अन्धकार से रक्षा कर, दिन के मुक्त प्रकाश को उजागर कर और हमे यह वरदान दे कि हम अपनी आखो से देख सकें। हमे नष्ट ही करना हो तो उजाले म हमारा नाश कर।"

अजक्स का सही दृष्टिकोण यही है। वह जीवन दान की प्रार्थना नही करता क्योकि ऐसी प्रार्थना किसी वीर के उपयुक्त नही। किन्तु क्योकि उस घोर अन्धकार मे वह अपनी वीरता का किसी भव्य उद्देश्य के लिए उपयोग नही कर पाता, इसलिए वह अपनी अकर्मण्यता पर क्षोभ प्रकट करता है और तुरन्त ही प्रकाश के वरदान की माग करता है। वह अपनी वीरता के अनुरूप अन्त तक सग्राम करने को प्रस्तुत है, फिर चाहे उसके शत्रुओ की पक्ति मे स्वय जेउस ही क्यो न आकर लडे हो जाए। सत्य यह है कि ऐसे सभी स्थलो पर होमर सग्राम की सम्पूर्ण प्रेरणा का स्वय भी अनुभव करता है, यह बात स्वय कवि के बारे मे भी उतनी ही सही है कि—

> वह उन्मत्त होकर भाला को चलानेवाले आरेस की भाति झपटता है
> अथवा उन पागल ज्वालाओ की भाति जो किसी सघन वन के भीतर
> एक पर्वत से दूसरे पर्वत तक प्रत्येक वस्तु को भस्मसात करता हुई लपकती हैं
>
> और उसके होठो के किनारो पर झाग निकल आया है।

किन्तु ओदुस्सेइआ[२७] (ओडिसी) मे यह प्रकट होता है (और इस कथन पर कई कारणो से ध्यान देना उचित होगा) कि जब किसी महान प्रतिभा की शक्ति क्षीण होने लगती है तो उस क्षीणता का विशेष द्योतक होता है अदभुत और विस्मयकारी कथाओ के प्रति अनुराग। कई बातो से यह स्पष्ट है कि ओदुस्सेइआ (ओडिसी) उसकी दूसरी रचना थी। इस तथ्य का एक विशेष प्रमाण यह है कि इस काव्य मे होमेरस (होमर) ने इलिउम[२८] के पूर्ववर्ती शेष साहसिक

ट्रत्यो को एक प्रकार से त्रिय (ट्रॉय) के युद्ध के उपाख्यानो के रूप म प्रस्तुत किया है, और वास्तव मे वहा वह अपने नायको के प्रति शोक और विलाप के रूप मे सम्मान प्रकट करता है मानो अपने किसी चिर अभीष्ट की पूर्ति कर रहा हो। वास्तव म ओद्युस्सेइआ (ओडिसी) 'ईलिअद'[१९] का उपसहार-मात्र है।

> वहा सोया है अभागा योद्धा अजस्य वही अखिल्लेस[२०] (ऐकिलीज) है वही है पत्रोक्लुस[२१] जिसके शब्दो का ऐसा महत्त्व था मानो वह देवता हो
>
> वही सोया है मेरा अपना प्यारा बेटा।

मेरा अनुमान है कि इसी कारण से उसने 'ईलिअद' की समस्त सघटना को, जो उसकी अत प्रेरणा के भव्यतम क्षणो मे लिखी गई थी, काव्य-व्यापार और सघर्ष से परिपूर्ण बनाया है। दूसरी ओर ओद्युस्सेइआ लेखक की वृद्धावस्था के अनुरूप अधिकाशत समाख्यान-प्रचुर है। इस प्रकार ओद्युस्सेइआ मे होमर की तुलना डूबते हुए सूर्य से की जा सकती है जिसके पास ऐश्वर्य तो होता है किन्तु तेज नही रहता। ओद्युस्सेइआ मे ईलिउम की कविताओ का जैसा उदात्त स्वर नही रह पाता। उसकी उदात्त भावनाए सभी स्थलो पर सम-स्थिर नही रह पाती—उनके क्षीण पड जाने की आशका रहती है, उसम न तो सचित आवेगो की वैसी प्रचुरता ही है और न वास्तव जीवन से लिए हुए चित्रो से परिपूर्ण नम्य तथा ओजस्वी शैली ही। उसमे तो एक प्रकार से शक्ति का ज्वार भाटा जैसा दिखाई पडता है और लगता है जैसे कल्पना विश्वासातीत तथा अवास्तविक लोक में विचरण कर रही है, मानो कोई महासागर अपने भीतर सिमटा जा रहा हो और अपनी ही सीमाओ के भीतर उघडता जा रहा हो। यह कहते समय मैं ओद्युस्सेइआ मे तूफानो के वर्णनो और क्युक्लोप जाति की कथा जैसे प्रसगो को भूला नही हू। मैंने वृद्धा-वस्था की बात कही, किन्तु वह वृद्धावस्था है तो होमर की ही। जो

हो, इस समस्त काव्य मे यथाथ की अपेक्षा कल्पना की हो प्रधानता है। इस विपयान्तर का उद्देश्य यह दिखाना है कि किस प्रकार महान प्रतिभाए भी अपने ह्रास की अवस्था मे कभी कभी कितनी आसानी से बेतुकी बातें करने लगती हैं। उदाहरण के लिए, शराब के चम पात्र से सम्बधित घटना, किरके द्वारा सुअरो की भाति डटकर खिलाए पिलाए जानेवाले लोगो का वणन (जि हे जोइलुस 'रिरियाते सुअर' कहता है), अथवा कपोतो द्वारा शावक की भाति पोषित ज़ेउस की कथा, भग्न पोत पर दस दिन तक बिना खाए-पिए रहनेवाले नायक और विवाहोत्सुक प्रेमियो की हत्या का अविश्वसनीय प्रकरण—ये सब प्रसग उपर्युक्त कथन की पुष्टि करते हैं। क्योकि इन्हे हम ज़ेउस के सपनो के सिवाय और क्या कह सकते हैं? ओद्युस्सेइआ के सम्ब ध मे इन बातो की चर्चा एक अन्य कारण से भी आवश्यक है—जिससे तुम जान सको कि महान कवियो और गद्य लेखको की प्रतिभा की चरम अभिव्यक्ति भावावेग का ह्रास होने पर चरित्र चित्रण मे होती है। क्योकि चरित्र चित्रण पर ध्यान रखकर ही ओद्युस्सेउस (ओडिसियस) के घरेलू जीवन के सम्बन्ध मे होमर ने ये सब विवरण दिए हैं, एक प्रकार से इन सबके कारण आचरण सम्ब धी प्रहसन जैसा बन जाता है।

(१०)

अब हम इस बात पर विचार करें कि शैली के औदात्त्य मे योग देनेवाली कोई अन्य वस्तु भी है अथवा नही। प्रत्येक वस्तु म स्वभाव से ही कुछ ऐसे तत्त्व रहते हैं जो उसके अभि न अग होते हैं। इसलिए, निश्चय ही, औदात्त्य का एक कारण तो हमे मिलेगा किसी वस्तु के सबसे महत्त्वपूण तत्त्वो का व्यवस्थित रीति से चयन करने और उनको परस्पर सगठित कर समग्र रूप देने की क्षमता मे। पहली प्रक्रिया मे श्रोता विचारो के निर्वाचन से आकृष्ट होता है और दूसरो मे उनके सघटन से। उदाहरण के लिए सफो[३४] सदा यथाथ जीवन के

अनुभूति-चक्र मे से केवल विक्षिप्त आवेग के सहवर्ती भावो का ही चयन करती है। उसका अपूर्व उत्कर्ष कहा प्रकट होता है ? वास्तव म जिस कौशल से वह आवेग की अधिक से अधिक प्रबल एव प्रभावोत्पादक परिस्थितियो का चयन और निबन्धन करती है, वह उसकी (कला की) उत्कृष्टता का मूल है

देवो म श्रेष्ठ वह मुझे जान पडता है, वह परमसुखी पुरुष
जो बठा हुआ अपन सामने तुझे निहार रहा है,
तेरे बहुत समीप बठा है वह और चुपचाप तेरी
रजत मधुर वाणी को सुन रहा है
प्रेम की मदुल हसी हसता हुआ। ओह यह, इससे तो बस
मेरे वक्ष के भीतर उद्विग्न हृदय काप उठता है!
क्योकि तुझे पल भर देखते ही मरी वाणी सहसा मूक हो जाती है
हा, मेरी जिह्वा टूट गई है और मेरे भीतर प्रत्येक शिरा म
मज्जा के नीचे एक अदृश्य अग्नि जाग उठी है
मेरी आख कुछ नही देख पातीं, और गर्जित लहरो का
स्वर मेरे कानो म गूजता है
प्रस्वेद की धाराए बह उठती हैं, मेरे समस्त अगो मे
एक कम्पन दौड जाता है,
और पतझर की घास से भी अधिक पीली,
आसन्न मत्यु की आशका की पीडा से ग्रस्त,
मैं लडखडाने लगती हू, प्रेम मूर्छा मे विलुप्त!

क्या तुम्हे विस्मय नही होता कि किस प्रकार क्षण भर मे वह आत्मा, शरीर, कान, जिह्वा, आखें, रग सबको ऐसे एकत्र करती है मानो वे सब उससे भिन्न और इधर-उधर बिखरे हुए हो ? वह परस्पर विरोधी तत्त्वो का समजन करती है एकसाथ ही वह उत्तप्त भी है और शीतल भी, प्रबुद्ध भी और विक्षिप्त भी, क्योकि या तो वह भयभीत है और या मरणासन्न। वह यह प्रभाव उत्पन्न करना चाहती है कि उसमे केवल एक ही आवेग नही बल्कि अनेक का सघात देखा जाए। ये सारी बातें सभी प्रेमियो के साथ होती हैं

किन्तु, जसा मैंने कहा, उपर्युक्त उद्धरण का अपूव सौन्दय सर्वाधिक प्रभावी तथ्यो को चुनने और उन्हें एक सम्पूण इकाई मे गूथ देने से ही उत्पन्न हुआ है। इसी प्रकार तूफानो का वणन करने मे होमेरस अधिक से अधिक भीषण परिस्थितियो का ही चयन करता है। 'अरिमसपेइया'[33] का लेखक इस प्रकार से भय उत्पन्न करने का उपक्रम करता है

> तथापि यह एक बडा भारी विस्मय है मेरी आत्मा के लिए—
> मनुष्य पृथ्वी से बहुत दूर जल पर निवास करत है जहा अगाध सागर लहराते हैं।
> अभाग वे, क्योंकि वे केवल यातना और पीडा की फसल ही काटते है
> उनकी आखें सदा सितारो की ओर लगी रहती है और उनके हृदय सदा सागर की ओर।
> मैं सोचता हू, प्राय देवताओ के लिए उनके हाथ ऊपर आसमान की ओर उठे रहत हैं।
> और प्रभु की ओर उन्मुख व्यथा भरे हृदय स प्रायना के स्वर मे व क्रन्दन करते हैं।

मेरे विचार से यह सवथा स्पष्ट है कि इन शब्दो मे भय से अधिक उदात्त भाव है। पर होमर क्या कहता ह ? अनेक उदाहरणो मे से केवल एक ही लीजिए

> और वह उनपर टूट पडा जस काले बादलो के नीचे उमडती हुई कोई तरग
> वायु से स्फीत विराट आकार धारण कर किसी जहाज पर टूट पडती है
> और विक्षिप्त फन ढक लेता है एक छोर से दूसरे छोर तक उसके समूचे आकार को,
> और तूफान का भयकर उच्छवास पाल म गरज उठता है
> नाविक-दल के हृदय भय से कापने लगते हैं
> क्योंकि बहुत ही कम दूर हैं अब वे मृत्यु के चगुल से।

अरतुस[३४] ने भी इसी कथन को बदलकर अपना काम निकालने का प्रयत्न किया है

और एक पतला तख्ता उन्हे मौत से बचा रहा है।

किंतु उसने भीषण की अपेक्षा इसे तुच्छ और स्वच्छ बना दिया है। इसके अतिरिक्त उसने यह कहकर कि 'एक तख्ता उन्हे मौत से बचा रहा है', सकट को परिसीमित कर दिया है। क्योकि आखिर बचा तो रहा है! किन्तु होमर एक क्षण के लिए भी दृश्य की भयावहता को सीमित नही करता, वरन् निरतर सकटापन्न मनुष्यो का स्पष्ट चित्र अकित करता है जो प्रत्येक उमडती हुई तरग के साथ मौत के मुह के पास पहुच जाते हैं। इसके अतिरिक्त उसने अस्वाभाविक रीति से जबदस्ती ऐसे परसर्गों को एकत्र कर दिया है जो साधारणत एक दूसरे के साथ सयुक्त नही होते। इस प्रकार उसने अपनी पक्तियो को आसन्न सकट के अनुरूप ढाल लिया है, छन्द के आकुचन द्वारा विपत्ति को सुन्दरता के साथ चित्रित किया है और सकट के आकार और दबाव तक को शब्दावली पर मुद्रित कर दिया है। यही बात आर्खिलोखुस[३५] द्वारा जहाज़ टूटने के वणन के बारे मे और देमोस्थेनेस (डेमोस्थनीज़) द्वारा वर्णित उस प्रसग के बारे म भी सही है जो 'जब सन्ध्या हो गई थी' शब्दो से प्रारम्भ होता है और जिसमें समाचार के लाए जाने का वणन है। यह कहा जा सकता है कि इन लेखको ने सारवान तथ्यो को ही लेकर सन्निबद्ध कर दिया है—किसी हलके, क्षुद्र अथवा हीन प्रसग का समावेश नही किया क्योकि ये दोष सम्पूण रचना के प्रभाव को नष्ट कर देते हैं जसे परस्पर समानुपाती प्राचीरो से मण्डित भव्य, सुनिर्मित प्रासादो के बीच कोई दरारें डाल दे।

(११)

ऊपर जिन गुणो का वणन किया गया है, उन्हीसे सम्बन्धित एक और भी गुण है जिसे 'विस्तारणा' कहा जा सकता है। इस

अलकार का प्रयोग उस समय होता है जबकि किसी समाख्यान अथवा विधि सम्बन्धी तकणा के प्रत्येक भाग मे बहुत से आरम्भ एव विराम स्थलो की सम्भावना हो और उदात्त पदावली, एक के बाद एक, अविच्छिन्न तथा उत्तरोत्तर क्रम से आती जाए। ऐसा या तो साधारण तथ्यो को आलकारिक रीति से प्रस्तुत करने से होता है या घटनाओ अथवा युक्तियो को प्रबलता से प्रस्तुत करने के उद्देश्य से सघनता की सृष्टि कर या फिर तथ्यो अथवा आवेगो की क्रमबद्ध प्रस्तुति के द्वारा। वास्तव मे 'विस्तारणा' के असख्य प्रकार हो सकते हैं। वक्ता को केवल प्रत्येक समय यह स्मरण रखना चाहिए कि इनमे से कोई भी उपाय उदात्त तत्त्व से अलग होकर अपने-आप मे सम्पूर्ण नही है। यदि दया भाव जागरित करना हो अथवा किसी विपक्षी को अप्रतिभ करना हो तो बात दूसरी है। 'विस्तारणा' के किसी भी प्रयोग मे से यदि उदात्त तत्त्व को निकाल दिया जाए तो यह ऐसा होगा जसे शरीर म से आत्मा को निकाल देना—क्योकि 'उदात्त' के सुदृढ आधार पर स्थित हुए बिना 'विस्तारणा' के वेग की तीव्रता और उसका सार तुरन्त नष्ट हो जाता है। किन्तु स्पष्टीकरण के लिए इस बात की ठीक ठीक व्याख्या करना आवश्यक ह कि हमारी यह वतमान स्थापना सवप्रमुख धारणाओ को चुनने और उनको समन्वित करने से सम्बद्ध पिछली स्थापना से किस प्रकार भिन्न ह और उदात्त तत्त्व तथा 'विस्तारणा' मे साधारणत क्या अतर ह।

(१२)

इस विषय मे भाषणशास्त्र के लेखको की व्याख्याओ से मुझे सन्तोष नही हैं। उनका कथन है कि 'विस्तारणा' वह उक्ति-कौशल है जिससे विषय को गरिमा प्राप्त होती ह। किन्तु यह व्याख्या औदात्त्य, आवेग और आलकारिक भाषा तीनो ही के विषय मे समान रूप से घट सकती है, क्योकि इनके द्वारा भी किसी न किसी रूप

मे वाणी को गरिमा प्राप्त होती है। मेरे विचार से उनमे अन्तर यही है कि औदात्य का तो प्राण-तत्त्व होता है ऊर्जा और विस्तारणा मे विवरण विस्तार रहता है। अतएव औदात्य प्राय किसी एक विचार मे ही निहित रहता है, जबकि 'विस्तारणा' का सम्बन्ध साधारणत विस्तार और प्राचुय से जोडा जाता है। सक्षेप मे कहा जाए तो 'विस्तारणा' किसी विपय के समस्त अगो और अगभूत प्रसगो के समुदाय का नाम है जिससे विपय के विस्तार द्वारा युक्ति मे वल आता है और जो प्रमाण से इस वात मे भिन्न है कि प्रमाण जहा विवेच्य विपय को सिद्ध करता है

प्लतोन (प्लेटो) अपनी अपार भाव सम्पत्ति द्वारा मानो किसी समुद्र की भाति चारो ओर फलकर महान आयाम धारण कर लेता है। मेरे अनुमान से यही कारण है कि वक्ता (देमोस्थेनेस), आवेगो को उद्‌बुद्ध करने की क्षमता अधिक होने के कारण, अपनी वाणी मे तेजस्वी आत्मा की समस्त दीप्ति प्रकट करता है। दूसरी ओर प्लतोन (प्लेटो) के बारे मे, जिसको गव और भव्य गरिमा का सुदृढ आधार प्राप्त है, यह तो आरोप नही किया जा सकता कि उसमे भाव की ऊष्मा नही है, किन्तु निश्चय ही उसमे वह प्रवेग नही है। और, मित्र तेरेन्तिआनुस, मुझको यह लगता है कि इन्ही सब वातों मे (यदि यह मानकर चल कि हम यूनानियो को इस विपय पर अपना मतामत व्यक्त करने का अधिकार है) सिसेरो[१४] उदात्त प्रसगो मे देमोस्थेनेस से भिन्न है क्योकि जहा देमोस्थेनेस मे अधिकतर परप औदात्य मिलता है, वहा सिसेरो म प्राचुय की प्रधानता है। हमारे वाग्मी वक्ता (देमोस्थेनेस) की तुलना विजली की कडक अथवा चमक से की जा सकती है क्योकि वह अपने वेग से और अपनी गति, शक्ति एव तीव्रता से मानो अग्नि द्वारा प्रत्येक वस्तु को भस्म कर देता है अथवा उसे अपने साथ उडा ले जाता ह। दूसरी ओर मुझे लगता है कि सिसेरो चतुर्दिक् फली

हुई ज्वाल-मालाग्रो की भांति है जिसकी सवभक्षी लपटें आगे बढती ही जाती हैं, जिसके ग्रन्तर का प्रचुर ग्रौर ग्रनन्त ग्रग्निपुज कभी समाप्त नही होता, जो कभी यहा दिखाई पडता है कभी वहा, और जो ग्रटूट क्रम से निरतर बढता ही रहता है।

इस बात का निणय तुम स्वय ही ग्रधिक ग्रच्छा कर सकोगे। किन्तु देमोस्थेनेस की उद्दीप्त ऊर्जा का अवसर उन प्रसगो मे आता है जहा ग्रभिव्यक्ति की तीव्रता ग्रौर आवेगो की प्रबलता हो ग्रौर जहा श्रोताग्रो को पूणत ग्रभिभूत करना ग्रभीप्ट हो। सिसेरो की प्रचुरता ऐसे स्थलो पर खुल खेलती है जहा श्रोता को शब्दो की बाढ मे वहा ले जाना आवश्यक हो, क्योकि यह प्रकार साधारण तथ्यो के वणन के लिए, *ग्रधिकतर लम्बे विवरण तथा विषयान्तर वणन के लिए*, इतिहास, प्रकृत विज्ञान तथा साहित्य के ग्रय कई विभागो से सम्बद्ध लेखन शली के लिए उपयुक्त है।

(१३)

विषयान्तर को छोड अब मुख्य विषय पर आए। इस प्रकार यद्यपि प्लतोन (प्लेटो) की वाणी प्रशात धारा की भांति बहती रहती है, फिर भी ऊर्जा विद्यमान है। यह बात तुम स्वय जानते हो, क्योकि तुमने 'गणतन्त्र'[२४] पढा है और तुम प्लतोन की शैली से परिचित हो। उसने लिखा है, "जो लोग बुद्धि-विवेक एव सद्गुण से विहीन हैं और मद्यपान के समारोहो तथा ग्रन्य ऐसे ही स्थानो पर सदा उपस्थित रहते हैं, वे मानो पतन की ग्रोर बढते चले जाते हैं ग्रौर आजीवन इसी प्रकार भटकते रहते हैं। वे कभी ऊपर सत्य की ग्रोर नही देखते, न कभी ग्रपना मस्तक ऊचा करते हैं, और न कभी किसी शुद्ध एव स्थायी आनन्द का ही उपभोग कर पाते हैं। उनकी आखें सदा पशुग्रो की भांति नीचे की ग्रोर धरती पर—ग्रपने चरागाह पर लगी रहती हैं। वे खाते-पीते हैं, मोटे होते है, सन्तान वृद्धि करते रहते हैं ग्रौर इन्ही सुखो की ग्रमिट लालसा के

कारण लोह के सींगों व खुरो को फटकारते और इधर-उधर मारते रहते हैं और तृष्णा मे लीन एक-दूसरे का विनाश करते रहते ह ।"

यदि हम ध्यान देने को प्रस्तुत हो तो यह लेखक इस बात को प्रकट करता है कि उदात्त की सिद्धि के अब तक हम जितने माग बता चुके हैं, उनके अतिरिक्त एक माग और भी ह । वह मार्ग क्या है और किस प्रकार का है ? वह है पूववर्ती महाकवियो और लेखको के अनुकरण और स्पर्धा का। और मेरे मित्र, यह ऐसा उद्देश्य है जिसके प्रति हमे निरतर प्रयत्नशील होना चाहिए क्योकि बहुत से व्यक्ति दूसरा की आत्मा से इतने प्रभावित हो जाते हैं मानो उह स्वय प्रेरणा मिली हो । इस सबध मे प्युथिआ की एक पुजारिन के बारे मे कथा है कि जब वह दिव्य वाष्प छोडनेवाली धरती की दरार के पास वेदी के निकट पहुचती तो अलौकिक शक्ति से अतर्व्याप्त होकर तुरन्त दैवी प्रेरणा से भविष्यवाणी करने लगती थी। इसी प्रकार प्राचीन युग के महापुरुषो की आत्माओ से (पवित्र गुफाओ की भाति ही) उनका अनुकरण करनेवालो के हृदय मे ऐसी धाराए प्रवाहित होती रहती हैं, जिनसे वे लोग भी जो बाहर से प्रेरणा ग्रहण करने मे असमथ मे लगते हैं, अनुप्राणित हो उठते ह और दूसरो की महानता के जादू से अभिभूत हो जाते हैं। क्या हेरोदोतुस ही होमेरस (होमर) का एकमात्र सच्चा अनुयायी था ? नही, उससे भी पहले स्तैसीखोरस[३८] और आर्खिलोखुस और इन सबसे अधिक स्वय प्लतोन (प्लेटो) होमर के महान कोप से असख्य निधिया प्राप्त कर चुके थे। और यदि अम्मोनिउस[३९] तथा उसके अनुयायियो ने इस विषय मे सारी सामग्री एकत्र न कर दी होती तो शायद हमे उद्धरण देकर इस बात को प्रमाणित करने की आवश्यकता होती। यह क्रिया साहित्यिक चोरी नही, यह तो किसी सुदर आकृति अथवा मूर्ति से या अय कलाकृतियो से भाव बिंब गहण करने के समान है। और मुझे लगता है कि यदि प्लतोन (प्लेटो) ने

अपने मन और मस्तिष्क को एकाग्र कर होमर पर विजय प्राप्त करने के लिए सघर्ष न किया होता, यदि वह एक ऐसे तरुण योद्धा की भाति मदान मे न उतरा होता जो किसी लोकप्रिय वीर से टक्कर लेता है और कदाचित् अपने अत्यधिक उत्साह प्रदर्शन के कारण एक-आध बार (तलवार तुडवा बठने) परास्त होने पर भी उस सघर्ष से लाभान्वित होता है, तो उसके दार्शनिक सिद्धान्तो मे इतनी परिपूर्णता प्रस्फुटित न होती और वह इस प्रकार अनेक स्थलो पर अपने वर्ण्य विषय तथा अभिव्यक्ति को इतना काव्यात्मक न बना पाता। क्योकि जैसा हसिओद ने कहा, "यह सघर्ष मर्त्यों के लिए उत्तम है।" और सचमुच गौरव-मुकुट के लिए ऐसा ही सघर्ष भव्य और विजय के उपयुक्त होता है जिसमे अपने पूर्ववर्ती से पराजित होना भी कोई अपमान की बात न हो।

(१४)

इसीलिए यह उचित है कि हम स्वय भी जब किसी ऐसे तथ्य का प्रतिपादन कर रहे हो, जिसके लिए उदात्त अभिव्यजना और ऊर्जित धारणा की आवश्यकता हो, तो हमे अपने मन मे यह कल्पना करनी चाहिए कि होमेरस (होमर) इसी बात को किस प्रकार कहता, अथवा प्लतोन (प्लेटो), देमोस्थेनेस या इतिहासकार थुक्युदिदेस[४०] उसे किस प्रकार उदात्त रूप प्रदान करता। क्योकि ये महापुरुष हमारे सामने प्रकट होकर, हमारे उत्साह को प्रज्वलित कर और एक प्रकार से हमारे मार्ग को आलोकित कर किसी गूढ रीति से हमारे मस्तिष्क को औदात्य के उन उच्च स्तरो तक ले जाएगे जो हमारे भीतर बिम्बित हैं। इससे भी अधिक उपयोगी अपने मन म यह प्रश्न करना होगा कि "यदि होमर अथवा देमोस्थेनेस यहा उपस्थित होते और मेरा यह कथन सुनते तो वे इसे किस प्रकार ग्रहण करते और उनके ऊपर इसका क्या प्रभाव होता ?" क्योकि यदि हम अपनी उक्तियो के लिए सचमुच ऐसे ही न्यायाधिकरण

और प्रेक्षागृह की कल्पना कर लें और यह सोच कि ऐसे ऐसे महारथी निर्णायक और साक्षी के रूप मे हमारी रचनाओ को कसौटी पर कस रहे हैं, तो सचमुच यह बडी ही कठोर परीक्षा होगी। यदि हम यह प्रश्न भी जोड ल तो प्रोत्साहन और भी अधिक होगा "मेरी इस प्रकार की रचनाओ को आनेवाला प्रत्येक युग किस प्रकार से ग्रहण करेगा ?" किन्तु यदि कोई व्यक्ति ऐसी बात करने के विचार तक से घबराता हो जो स्वय उसके जीवन और युग की सीमा का अतिक्रमण कर सके, तो उसकी धारणाओ को निश्चय ही अपूर्ण, दृष्टिहीन और एक प्रकार से समय से पूव उत्पन्न मानना चाहिए क्योकि उनमे किसी भी भाति ऐसी परिपूर्णता नही होगी जो भावी युगो मे कीर्ति-प्रसार के लिए आवश्यक है।

(१५)

इसके अतिरिक्त, मेरे तरुण मित्र, बिम्ब (या कल्पना चित्र) भी, प्रवक्ता की भाति, गरिमा, ऊर्जा और शक्ति के सम्पादन म बहुत कुछ सहायता करते हैं। इस अथ मे कुछ लोग उन्ह मानसिक प्रतिकृति कहते हैं। सामान्यत बिम्ब (अथवा कल्पना चित्र) की सज्ञा मन के प्रत्येक ऐसे विचार को दी जाती है जो चाहे किसी रूप मे प्रकट होने पर भी वाणी को प्रस्फुरित करता है। पर आजकल यह शब्द मुख्यत ऐसे अवसरो पर प्रयुक्त होता है जहा उत्साह और आवेग मे आकर हम सोचते हैं कि जो कुछ हम वणन कर रहे हैं उसे साक्षात देख रहे हैं और अपने श्रोताओ के आगे भी प्रत्यक्ष कर रह हैं। इसके अतिरिक्त तुम यह जानते ही होगे कि कल्पना चित्र का वक्ता के लिए एक उपयोग है और कवि के लिए दूसरा। जहा काव्य के क्षेत्र मे कल्पना चित्र का उद्देश्य अभिभूत करना है, वहा भाषण के अतगत उसका उद्देश्य होता है प्रत्यक्ष वणन करना। किन्तु आवेगो और भावनाओ को तो दोनो ही उद्बुद्ध करते हैं।

मा ! —तेरे परा पडता हू, मेरी ओर मत बुला
उन कुमारियो को, रक्त-नयना और भुजगकेशिनी !
वह देखो ! —वह देखो ! —वे आ पहुची—मेरे ऊपर झपटी !

और

आह ! वे मुझे मार डालेंगी ! मैं कहा भागू ?

इन दश्यो मे स्वय कवि ने असुरागनाओ को कल्पना मे प्रत्यक्ष देखा है और अपने पाठको को भी अपने मन के बिम्ब को देखने के लिए लगभग विवश कर दिया है। एउरिपिदेस[41] प्रेमावेश और पागलपन, इन दोनो भावनाओ को अधिक से अधिक त्रासद रूप देने के लिए अत्यन्त प्रयत्नशील रहता है। शायद अन्य किसी क्षेत्र की अपेक्षा इस विषय में उसे सफलता अधिक मिलती है, यद्यपि उसमे कल्पना के अन्य समस्त क्षेत्रो पर भी आक्रमण करने का साहस पर्याप्त मात्रा मे है। स्वभाव में औदात्य का अभाव होते हुए भी वह अनेक प्रसगो मे अपनी प्रतिभा से करुणा के उच्चतम शिखरो को छू लेता है और औदात्य के सम्बन्ध म सभी स्थलो पर (होमेरस के शब्दो मे कहे तो) उसके बारे मे यह सत्य है कि

घोडे की पूछ उसकी पसलो और बगल के ऊपर दाए बाए कोडे की तरह पड रही है,
और वह और भी विक्षिप्त हो उठता है और उसे युद्ध के लिए प्रेरित करता है।

फएथोन[42] के हाथ मे घोडो की रास देते समय सूय कहता है

तू, हाकते हुए लिबिया के आकाश को पार न करना
ओस स अनभिषिक्त उसका ताप
तेरे रथ के टुकडे टुकडे कर देगा।

और फिर उसके बाद

शीघ्रतापूवक साता प्लेइअद बहिनो[43] की ओर जाना।
इतना ही कुमार ने सुना फिर उसने रासें छीन ली
उसने कोडे फटकारे उन पक्षधर अश्वो के उपर,

रास ढीली हुई, और वे मेघलोक के भीतर उड चले।
ठीक पीछे एक ज्वलत सितारे पर
उसका पिता आरूढ था, अपने पुत्र को परामर्श देता हुआ—
ए! उधर चलो!
उस ओर रथ को मोडो—उस ओर!

क्या तुम नही कहोगे कि लेखक की आत्मा फएथोन के साथ-साथ ही रथ मे प्रवेश कर जाती है और उसके जोखिम तथा घोडो के वायु वेग का समानुभव करने लगती है? क्योकि यदि उसने उतने ही वेग से आकाश की यात्रा न की होती तो ऐसे चित्र की कल्पना करना सम्भव नही था। एउरिपिदेस ने कस्सान्द्रा[४४] से जो शब्द कहलवाए हैं, उनके बारे मे भी यही बात सही है।

ओ रथ प्रमी त्रिग्रवासियो!

ऐस्स्युलुस[४५] भी इसी प्रकार अत्यत ओजस्वी कल्पना-चित्र प्रस्तुत करता है। इसका एक उदाहरण उसकी 'थेबेस के सात शत्रु'[४६] नामक रचना मे मिलता है, जहा वह कहता है

क्योकि सात वीरो ने, दुद्धष गुल्म-नायको ने
काली ढाल लेकर एक वृषभ को मारा है
और वृषभ के रक्त म हाथ डुबाकर प्रत्येक ने
आरस[४७] और एन्यो[४८] की, और रक्त के प्रेमी फबिक[४९] की
शपथ ली है।

परस्पर निष्ठापूवक एकसाथ शपथ लेकर उन्होने अपने आपको एक क्रूर नियति के हाथो पूरी तरह सौंप दिया था। किन्तु कभी-कभी वह ऐसे भी विचार सामने ले आता है जो अनगढ, परिष्कार-हीन और कवश होते हैं, और एउरिपिदेस जब स्पर्धा की भावना से प्रेरित होता है तो अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति के बावजूद वह बहुत कुछ इसी दोष के समीप आ जाता है। इस प्रकार ऐस्स्युलुस ने दिओन्युसुस[५०] के आगमन के अवसर पर ल्युकुर्गस के महल को विचित्र प्रकार से भावाविष्ट दिखाया है।

वन आवेग से काप रहे हैं छन्दे रूप से उन्मत्त हो उठी हैं।

एउरिपिदेस मे भी दूसरे शब्दो मे इसी विचार की प्रतिध्वनि मिलती है—यद्यपि यह सही है कि उसका फूहडपन कुछ कम हो गया है। वह कहता है

समस्त पवत उनके हर्षोल्लास से नाच उठा था।

सोफोक्लेस ने ओइदिपुस[११] (ईडिपस) की मृत्यु के भव्य चित्र प्रकल्पित किए हैं जिनम वह आकाश के बीच उसके अतिम सस्कार की तयारी करता है। इसी प्रकार वह स्थल भी भव्य है जहा यूनानी जहाजो म बठकर चलने को उद्यत हैं और अखिल्लेस (एचिलीज) समुद्र यात्रा के लिए तैयार होनेवाले लोगो के सामने अपनी समाधि के ऊपर प्रकट होता दिखाई पडता है। इसी दृश्य का सिमोनीदेस[१२] ने भी वणन किया है और मुझे सदेह है कि उससे अधिक विशद वणन कोई और कर पाया है या नही। किन्तु यहा इस प्रसग के सभी उदाहरणो को, जो मेरे मन म आ रहे हैं, प्रस्तुत करना सम्भव नही है। यह निस्सन्देह सत्य है कि कवियो मे प्राप्त उदाहरणो मे, जैसाकि मैं पहले कह चुका हू, अतिशयोक्ति की प्रवृत्ति दिखाई पडती है और उनके वणन इतने काल्पनिक हो जाते हैं कि विश्वस-नीयता की सीमा का भी अतिक्रमण कर जाते हैं। किन्तु भाषण-सम्बन्धी अप्रस्तुत विधान का सबसे उत्तम गुण है यथार्थता और सत्यता। जब भी भाषण काव्यात्मक एव काल्पनिक हो उठता है और हर प्रकार के सम्भव असम्भव का चित्रण करने लगता है तो ऐसे प्रसग सदा ही विचित्र और अजनबी से लगते हैं। उदाहरण के लिए हमारे आज के चतुर वक्ताओ को अपने त्रासदी-लेखको की भाति ही असुरागनाए दिखाई पडती हैं और वे महापुरुष इतना भी नही समझते कि जब ओरेस्तेस[१३] यह कहता है—

मरे हाथ खोल दो।—तू मुझ सतानेवाला प्रेत है—
मेरी कमर पकडकर नरक म फकना चाहता है।

तो उसके दिमाग मे ये कल्पनाए इसलिए आती ह क्योकि वह विक्षिप्त है। तो फिर भाषण सम्बधी अप्रस्तुत विधान का क्या उद्देश्य हो सकता है? वास्तव मे यह विधान कई प्रकार से भाषित शब्दो मे तीव्रता और आवेग का समावेश कर सकता है, और जब विशेष रूप से ऐसे प्रसगो मे उसका प्रयोग होता है जिनमे तक की प्रधानता है, तो वह श्रोताओ का न केवल अनुनय ही करता है बल्कि उन्हे वास्तव मे अपना दास बना लेता है। एक उदाहरण देखिए।

देमोस्थेनेस कहता है "यदि इसी क्षण न्यायालयो के सामने एक ज़ोर की चीख सुनाई पडे, और हमे यह बताया जाए कि कारागार खुले पडे हैं और बन्दी सब भाग निकले हैं तो कोई भी, चाहे वह वृद्ध हो या तरुण, इतना असावधान नही हो सकता कि यथाशक्ति सहायता करने के लिए प्रस्तुत न हो जाए। यही नही, और कोई यदि सामने आकर यह कहे कि अमुक व्यक्ति ने उनके निकल भागने म सहायता की है तो अपराधी को तुरन्त ही बिना किसी सुनवाई के मौत के घाट उतार दिया जाएगा।" इसी प्रकार जब महान पराजय के पश्चात् दासो को मुक्त कर देने के प्रस्ताव के कारण ह्यूपेरिदेस[५४] के विरुद्ध दोषारोपण किया गया, तो उसने कहा था, "यह प्रस्ताव वक्ता ने नही खरोनेइआ के युद्ध ने प्रस्तुत किया है।" वक्ता ने यहा एकसाथ ही एक विशेष तक पद्धति और कल्पना दोनो का सहारा लिया है। इसलिए अपनी कल्पना की निर्भीकता के कारण वह अनुनय मात्र की सीमा का अतिक्रमण कर गया है। इन समस्त विषयो मे हम एक प्रकार के नैसर्गिक नियम के अनुसार सदा ही प्रबलतर वस्तु की ओर ध्यान पहले देते हैं। इसी कारण से किसी सहज और सीधे वणन की अपेक्षा हम तुरन्त ही ऐसे विलक्षण कल्पना चित्र की ओर आकर्षित हो जाते हैं जिसके तीव्र प्रकाश मे युक्ति छिपी होती है। और यह कोई अनुचित नही है कि हम-

पर इस प्रकार का प्रभाव पडे क्योंकि जब दो वस्तुए एकसाथ आती हैं तो प्रबल वस्तु दुबल के गुण को अपने मे खीच लेती है। आत्मा की महानता अथवा अनुकरण या कल्पना विधान से उत्पन्न विचारगत औदात्त्य के उदाहरणो के सम्बन्ध मे इतना पर्याप्त होगा।

(१६)

किन्तु यही पर क्रमानुसार अलकारो के स्थान का प्रश्न उठता है। क्योंकि यदि उनका उचित रीति से उपयोग किया जाए तो, जैसा मैं पहले कह चुका हू, उनसे औदात्त्य की सिद्धि मे कम सहायता नही मिलती। पर इस समय उन सबके बारे मे पूर्ण विवेचन करना बहुत बडा काम हो जाएगा या यो कहें कि वह कभी पूरा ही न हो पाएगा, इसलिए अपनी स्थापना को सिद्ध करने के उद्देश्य से हम उनमे से कुछेक ऐसे अलकारो पर ही विहगम दृष्टि डालेंगे जिनसे भाषा ओजस्वी बनती है।

देमोस्थेनेस अपनी सार्वजनिक नीति का युक्तिसगत समर्थन प्रस्तुत करना चाहता था। उसने स्वभावत अपने विषय का जिस रूप मे प्रतिपादन किया वह इस प्रकार का था 'आप लोग, जिन्होंने यूनान की स्वतन्त्रता के लिए सघर्ष किया, गलती पर नही थे। आन्तरिक स्थिति को देखते हुए आपके लिए यह आवश्यक था। मरथोन के योद्धाओ ने अथवा सलमिस अथवा प्लतेइआ के योद्धाओ ने कोई भूल नही की है।" किन्तु जब मानो एकाएक दैवी प्रेरणा प्राप्त कर और जैसे भविष्यवाणी के देवता से आविष्ट होकर वह यूनान के सरक्षक वीरो की प्रसिद्ध शपथ लेता है "निस्सदेह आप लोगो ने कोई भूल नही की, यह बात मैं उन लोगो की शपथ लेकर कहता हू जो मरथोन पर सकट के सामने सीना ताने खडे थे," तो जनता की दृष्टि म इस शपथोक्ति अलकार के द्वारा (जिसे मैं 'सम्बोधन' कहता हू) वह अपने पूवजो को देव कोटि मे प्रतिष्ठित कर देता है। वह यह विचार मन मे बिठा देता है कि हमे ऐसी भव्य

मृत्यु प्राप्त करनेवालो की देवताओ की भाति ही शपथ लेनी चाहिए, वह निणायकी के मन मे वैसी ही ओजस्वी भावनाए भर देता है जसीकि उस खतरे को सीने पर झेलनेवालो के मन म उदित हुई होगी। इस प्रकार युक्ति के सहज क्रम को एक अपूव औदात्य और आवेग प्रदान कर देता है—साथ ही उसमे ऐसा सुदढ विश्वास भर देता है जो इस प्रकार की विचित्र एव विलक्षण शपथो के द्वारा उत्पन्न होता है। वह अपने श्रोताओ के मन मे यह दृढ विश्वास उत्पन्न कर देता है—जो रोग के उपचार और प्रतिकार दोनो का काय करता है—कि उन्हे इन प्रशस्तियो के द्वारा आत्मोत्कर्ष प्राप्त कर फिलिप के विरुद्ध सग्राम मे भी उसी प्रकार गव का अनुभव करना चाहिए जिस प्रकार मरथोन और सलमिस की विजय मे। इन सब उपायो से केवल एक अलकार का प्रयोग कर वह अपने श्रोताओ को पूणत अपने साथ वहा ले जाता है।

वास्तव मे कहा यह जाता है कि इस सौगन्ध का मूल एउपोलिस[५५] की रचना मे पाया जाता है।

> क्योकि मैं मरथोन म प्राप्त विजय की शपथ खाकर कहता हू
> कोई यदि मेरी आत्मा को कष्ट पहुचाएगा तो बिना पछताए न रहेगा।

किन्तु अकस्मात् ही किसी व्यक्ति की सौगन्ध खाना इतना उदात्त नही है, उदात्तता तो स्थान, ढग, परिस्थिति और उद्देश्य के ऊपर निभर करती है। अब, एउपोलिस के उद्धरण मे निरी शपथ के अतिरिक्त और कुछ नही है और यह शपथोक्ति अथेनियो के समक्ष उस समय की गई थी जब वे समृद्ध ही थे और उन्ह किसी सान्त्वना की आवश्यकता ही न थी। इसके अतिरिक्त कवि ने अपनी उक्ति मे मनुष्यो को ऐसी कोई दिव्यता प्रदान नही की है जिससे श्रोताओ मे उनके शौय की समुचित धारणा उत्पन्न हो सके, बल्कि वह खतरे के सामने सीना ताने खडे हुए सप्राण व्यक्तियो को छोड युद्ध जसी निर्जीव वस्तु की ओर भटक गया है। देमोस्थेनेस की

शपथोक्ति पराजित व्यक्तियो के लिए इस उद्देश्य से रची गई है कि श्रयेनी जनता अब खैरोनेइआ के युद्ध को पराजय न समझे। जैसा मैं कह चुका हू, वह एकसाथ ही उनके सामने इस बात की व्याख्या करता है कि उन्होने कोई भूल नही की, एक उदाहरण और सौगन्ध का निश्चित प्रमाण भी देता है और प्रशस्ति तथा उपदेश भी करता है, क्योकि वक्ता को इस प्रकार की आपत्ति होने का डर था "आप बात तो अपने शासन मे होनेवाली 'पराजय' की कर रहे हैं, और शपथ 'विजय' की करते हैं।" इसलिए वह वाद के वाक्यो मे अलग-अलग शब्दो को भी तोलकर कहता है और उन्हे ऐसी निर्भ्रान्त रीति से चुनता है जिससे यह प्रकट होता है कि कल्पना विलास मे भी सयम आवश्यक है। उसके शब्द हैं "जो लोग मरथोन मे सकट के सामने सीना ताने खडे थे, जो लोग सलमिस और अर्तेमीसिउम के समुद्र मे लडे थे और जो प्लतेइआ की सैन्य पक्तियो म उपस्थित थे।" कही भी वह इन शब्दो का प्रयोग नही करता कि "उन्होने विजय प्राप्त की थी", बल्कि हर अवसर पर वह युद्ध के परिणाम के प्रत्येक सकेत को बचा जाता है, क्योकि वह परिणाम तो शुभ था और जो कुछ खैरानेइआ म हुआ उसके सवथा विपरीत था। इसलिए वह तुरत आगे बढकर श्रोता को अपने साथ वहा ले चलता है। वह कहता ह "ऐसखिनेस[२६], राज्य की ओर से केवल सफल व्यक्तियो को नही बल्कि उन सभीको सावजनिक समाधि सस्कार का गौरव प्रदान किया गया था।"

(१७)

मेरे मित्र, यहा यह उचित होगा कि मैं अपनी एक धारणा का व्यक्त कर दू जिसे मैं बहुत ही सक्षेप म प्रस्तुत करूगा। वह यह ह कि एक प्रकार के प्राकृतिक नियम के अनुसार अलकार औदात्य का अवलम्ब प्रदान करते हैं और बदले म वे स्वय भी उससे अद्भुत बल प्राप्त करते हैं। कहा और कैसे, यह मैं अभी स्पष्ट करूगा। अलकारो

के चतुर प्रयोग से सदा एक विचित्र प्रकार का सन्देह उत्पन्न हुआ करता है और उससे एक प्रकार के छिपाव, षड्यन्त्र और हेत्वाभास का प्रभाव उत्पन्न होता है। यदि अभिकथन किसी सपूण अधिकार-प्राप्त न्यायाधीश अथवा निरकुश शासक, राजा तथा प्रतिष्ठित नेता को सबोधित कर किया जाए तो भी ऐसा ही होता ह। ऐसे व्यक्ति को यदि एक मूख बालक की भाति वाक कौशल के क्षुद्र अलकारो द्वारा प्रवचित करने का प्रयत्न किया जाए तो वह तुरत रुष्ट हो जाता ह। अलकार के हेत्वाभास को व्यक्तिगत अपमान के रूप मे ग्रहण कर कभी कभी वह क्रोध से एकदम विक्षिप्त हो उठता है या फिर क्षोभ को सयत कर उन अनुनयात्मक शब्दो से किसी प्रकार प्रभावित न होने के लिए पूणत दढसकल्प हो जाता है। इसीलिए अलकार का सबसे सफल प्रयोग वह है जहा इस बात पर भी किसी-का ध्यान न जाए कि यह अलकार है। इसीलिए अलकारो के प्रयोग से जो सन्देह उत्पन्न होता है, उसके विरुद्ध औदात्य तथा आवेग प्रतिकार भी है और बडी भारी सहायता भी। एक बार सौन्दर्य और औदात्य के साथ सबद्ध हो जाने पर उनका कुशल प्रयोग करनेवाली कला छिप जाती है और समस्त सभाव्य सदेह से बच जाती है। पर्याप्त प्रमाण उक्त अवतरण मे ही मिल जाता है। "मरथोन के योद्धाओ की सौगन्ध खाता हू।" यहा वक्ता ने किस उपाय से अलकार को छिपाया है?—स्पष्ट ही अत्यधिक प्रकाश के द्वारा। क्योकि जिस प्रकार सूय के प्रखर आलोक म सभी मद दीपक बुझ जाते हैं, उसी प्रकार 'उदात्त' के सवव्यापी ऐश्वर्य म नहाकर सभी आलकारिक चमत्कार दृष्टि से ओझल हो जाते हैं। बहुत कुछ ऐसी ही बात चित्रकला मे भी होती है। क्योकि यद्यपि रगो के रूप मे छाया और प्रकाश एक ही तल पर पास पास वतमान होते हैं, तो भी दृष्टि सबसे पहले प्रकाश पर पडती है जो न केवल पहले उभर आता है बल्कि अधिक समीप भी जान पडता ह। यही बात साहित्य

मे ग्रावेग ग्रौर ग्रौदात्य की ग्रभिव्यक्ति के विषय मे है । वे एक प्रकार के सहज सम्बन्ध के कारण तथा स्वय ग्रपनी ग्राभा के फलस्वरूप हमारे मन के ग्रधिक निकट रहते हैं ग्रौर ग्रलकारो की ग्रपेक्षा, जिनकी कला को वे एक प्रकार से ग्राच्छ न कर छिपा देते हैं, उनकी ग्रोर हमारा ध्यान सदा ही पहले जाता है ।

(१८)

किन्तु फिर हम प्रश्नालकार ग्रादि के बारे मे क्या कहेगे ? क्या यह सत्य नही है कि इन ग्रलकारो के प्रत्यक्षकारी गुणो के द्वारा ही देमोस्थेनेस ग्रपने भाषण को कही ग्रधिक मार्मिक ग्रौर प्रभावी बनाने का प्रयत्न करता है ? "कृपा कर मुझे बताइए,——ग्राप श्रीमान, मुझे बताइए—क्या ग्राप इधर उधर भटककर एक दूसरे से यह पूछना चाहते हैं कि कोई समाचार है क्या ? ग्ररे, इससे बडा समाचार क्या हो सकता है कि एक मक्दूनिग्रावासी यूनान को वश म किए ले रहा है ? क्या फिलिप मर गया ? नही, किन्तु वह रुग्ण है । मत ग्रथवा रुग्ण, इससे ग्रापके लिए क्या ग्रतर पडता है ? उसको यदि कुछ हो भी जाए तो ग्राप लोग शीघ्र ही दूसरा फिलिप बनाकर खडा कर देंगे ।" ग्रागे वह कहता है, "हमे मकदूनिग्रा पर चढाई कर देनी चाहिए । एक साहब पूछते हैं कि हम जहाज से कहा जाकर उतरेंगे ? स्वय युद्ध के द्वारा ही फिलिप की स्थिति के दुर्बल स्थलो का उदघाटन हो जाएगा ।" इन सब बातो को यदि सीधे ढग से ग्रौर प्रत्यक्ष शैली के द्वारा कहा जाता तो वे बहुत ही निर्बल जान पडती, किन्तु इस रूप मे शब्दो के पीछे छिपी उत्तेजना, प्रश्नोत्तर की सत्वर परम्परा ग्रौर ग्रपने ही ग्राक्षेपो का इस प्रकार निराकरण करने की योजना, मानो वे किसी ग्रौर की ग्रोर से किए गए हो——इन सब गुणो ने ग्रलकार की सहायता से भाषा को न केवल ग्रधिक उदात्त वरन ग्रधिक विश्वासोत्पादक भी बना दिया है । क्योकि किसी ग्रावेग का उद्गार उस समय ग्रधिक प्रभावशाली होता है जब वह विचार प्रसूत न होकर

ारिस्थिति प्रेरित जान पड़े, और प्रश्न उठाकर अपने-आप ही उनका उत्तर दे देने से भावावेग का विस्फोट स्वाभाविक जान पडता है। क्योंकि जब किसीसे कोई प्रश्न पूछा जाता है तो वह एक आकस्मिक उत्तेजना का अनुभव करता है और उस प्रश्न का तीखा और बिलकुल बेलाग उत्तर देने का प्रयत्न करता है। इसी प्रकार प्रश्नोत्तर अलकार श्रोता को यह मानने के लिए प्रेरित करता है कि प्रत्येक अभिप्रेत विचार पूर्व-सकल्प के बिना तत्काल ही उदित होकर प्रकट हो रहा है और इस तरह उसकी तर्क शक्ति को भुलावे मे डाल देता है। यहा हम हेरोदोतुस के उस अवतरण को उद्धृत कर सकते हैं जिसे अत्यधिक ओजपूर्ण उदाहरणो मे गिना जाता है "यदि इस प्रकार ।"

(१९)

इससे शब्द योजक कडियो के बिना नि सृत होते-से जान पडते हैं, मानो वे स्वय वक्ता को भी पीछे छोडकर उमडे पड रहे हों। क्सेनोफोन कहता है, "अपनी ढालो को भिडाकर वे आगे बढे, जूझे, शत्रुओं का वध किया, आहत होकर गिर गए।" यही बात एउरयुलोखुस के शब्दो के विषय मे है

> तुम्हारे आदेश के अनुसार ओदुस्सेउस, हम झाड-वनों की छाया के बीच से चल,
> वहा वन-कन्दराओ के बीच एक सुन्दर महल हम मिला।

ये पक्तिया एक दूसरे से अलग होने पर भी एक साथ शीघ्रतापूर्वक पढी जाने के कारण ऐसी उत्तेजना का प्रभाव उत्पन्न करती हैं जिससे पदो के बीच का व्यवधान तिरोहित हो जाता है और साथ ही एक उद्दाम वेग फूट पडता है। यह प्रभाव होमर ने सयोजक शब्दों को छोडकर उत्पन्न किया है।

(२०)

किसी साधारण उद्देश्य के लिए अलकारों की समष्टि से

साधारणत बडा प्रबल प्रभाव पडता है जब दो या तीन अलकार मानो सहयोगी के रूप मे मिलकर शक्ति, प्रभावोत्पादकता तथा सौन्दय की अत्यत श्रीवृद्धि करते हैं। इस प्रकार मेइदिग्रास[१८] के विरुद्ध भाषण मे 'शब्दो की पुनरावत्ति'* और 'प्रत्यक्ष वणन'† के उदाहरणो के साथ गुथे हुए 'अधूरे वाक्यो'‡ के उदाहरण मिलेंगे। "क्योकि घातक अपनी मुद्रा से, अपनी दृष्टि से और कण्ठ स्वर से बहुत-से काम कर सकता है (जिनमे से कुछेक का तो झेलनेवाला दूसरे को बता तक नही सकता)।" इसलिए इस विचार से कि वणन आगे बढने के साथ साथ एक ही गति से न चलता रहे (क्योकि निरन्तरता शाति की सूचक है जबकि आवेग—आत्मा का आवेश और सक्षोभ—अनुक्रम को छिन भिन कर देना है), वह तुर त ही अ य अधूरे वाक्यो और पुनरावत्तियो का सहारा लेता है। "मुद्रा से, दृष्टि से, कण्ठ स्वर से, वह उद्धत आचरण करता है, वह शत्रु जैसा व्यवहार करता है, अपनी मुट्ठियो से आघात करता है, वह आपकी दास की तरह ताडना करता है।" इन शब्दो के द्वारा वक्ता आक्रमणकारी का सा ही प्रभाव उत्पन्न करना चाहता है—वह यायाधीशो के मन पर एक के बाद एक जल्दी-जल्दी आघात करता जाता है। इस स्थल से प्रारम्भ कर तेज हवा के झोके की भाति अकस्मात ही वह दूसरा आक्रमण करता है। वह कहता है "घूसो के प्रहार से आघात पाकर, गाल पर चोट खाकर। ये सब चीजें खून को गम कर देती हैं और अपमान के अनभ्यस्त लोग आपे से बाहर हो जाते हैं। उनका वणन करके कोई भी उनमे निहित अपमान की तीव्रता को अभिव्यक्त नही कर सकता।" इस प्रकार वह सम्पूण भाषण म 'पुनरावत्तियो' और 'अधूरे वाक्यो' की वास्तविक प्रकृति को, लगातार रूप परिवतन करता हुआ भी, यथावत् बनाए रखता है। इस प्रकार उसकी व्यवस्था मे अव्यवस्था है और दूसरी ओर अव्यवस्था मे एक प्रकार की व्यवस्था का तत्त्व विद्यमान रहता है।

---

* अनाफोरा   † डियटुपोसिस   ‡ असुनदेतोन

(२१)

अब यदि तुम चाहो तो इन उदाहरणों में इसोक्रतेस के अनुयायियों की भांति संयोजक पद भी जोड़ सकते हो। "इसके अतिरिक्त इस बात को भी नहीं भूलना चाहिए कि घातक बहुत-से काम कर सकता है, पहले मुद्रा द्वारा, फिर दृष्टि द्वारा और फिर केवल कण्ठ स्वर द्वारा।" तुम अनुभव करोगे कि यदि इन पंक्तियों को इस व्यवस्थित ढंग से रखा जाए तो आवेग की अनगढ़ प्रचंडता इस प्रकार संयोजक शब्दों के प्रयोग से समरूप एवं ऋजु बनकर सर्वथा कुंठित और तुरंत ही निस्तेज हो जाती है। जैसे दौड़नेवालों की आंखों को बांध देने से उनकी तीव्र गति की शक्ति नष्ट हो जाती है, वैसा ही आवेग के साथ भी होता है। इसी प्रकार संयोजक पदावली तथा अन्य साधनों की शृङ्खला में बंधकर आवेग छटपटाने लगता है, क्योंकि उसकी आगे बढ़ने की स्वाधीनता और तोप के गोले की तरह वेग से उद्गमन करने की शक्ति नष्ट हो जाती है।

(२२)

विपर्यय* अथवा व्यतिक्रम† को भी इसी कोटि में रखना चाहिए। उनमें शब्दों अथवा विचारों के सहज क्रम में उलट-फेर कर दिया जाता है, और यह कहा जा सकता है कि उनके बाह्य रूप पर ही प्रबल भावना की छाप होती है। जिस प्रकार मनुष्य वास्तव में क्रोध, भय, मन्यु, ईर्ष्या अथवा किसी अन्य भावना से (क्योंकि आवेग अनेक और असंख्य हैं और उनकी गणना संभव नहीं) उत्तेजित होकर कभी-कभी दूसरी ओर मुंह फेर लेते हैं, अपने मुख्य विषय को छोड़ दूसरे पर लपक उठते हैं और बीच ही में कोई सर्वथा असम्बद्ध बात ले आते हैं, फिर उसी प्रकार अचानक ही

*अ_परबाता †न्परशन

तेज़ी से घूमकर अपने मुख्य विषय पर लौट आते हैं और वातचक्र की भाति अपने ही वेग से परिचालित होकर जल्दी जल्दी इधर उधर बहकते वे अपनी शब्दावली को, विचारो को और उनके सहज क्रम को नाना प्रकार के असख्य रूपो मे बदलते रहते हैं, उसी प्रकार श्रेष्ठ लेखक विपयय के द्वारा इस प्रकृत प्रभाव का यथासभव अभिव्यक्त करते हैं। क्योकि कला प्रकृति के समान प्रतीत होने पर ही सम्पूर्ण होती है और प्रकृति तभी अपने उद्देश्य मे सफल होती है जब उसके गभ मे कला छिपी हो। हम इसके उदाहरणस्वरूप हेरोदोतुस द्वारा लिखित फोकाइआ के दिओ-युसिअस के शब्दो को प्रस्तुत कर सकते है "हमारा भाग्य तलवार की धार पर टिका हुआ है, ह आयो निआवासियो! हमारे सामने दो विकल्प हैं—स्वाधीनता या गुलामी, और वह भी भगोडे दासो की। इसलिए अब यदि तुम लोग कष्ट सहन करने के लिए प्रस्तुत हो, तो इस समय परिश्रम करना होगा, पर अ त मे तुम अपने शत्रुओ पर विजय प्राप्त कर सकोगे।" इस उक्ति का स्वाभाविक क्रम इस प्रकार होता, 'हे आयोनिआवासियो! इस समय तुम्हारे लिए कष्ट सहन करने का है क्योकि हमारा भाग्य तलवार की धार पर टिका है।" यहा पर वक्ता 'आयोनिआवासियो' शब्दो को बाद मे लाता है। वह तुर त ही परिस्थिति के खतरे से अपनी बात प्रारम्भ करता है मानो सकट इतना आस न हो कि उसके पास श्रोताओ को सबोधित करने का भी समय न हो। इसके अतिरिक्त वह विचारो के क्रम मे विपयय करता ह। क्योकि यह कहने की बजाय कि उ हे कष्ट सहन करने चाहिए, जोकि उसको वक्तता का वास्तविक उद्देश्य है, वह पहले उस कारण को प्रस्तुत करता है जिसके लिए उनका कष्ट सहन करना आवश्यक है। इस कारण को वह इन शब्दो मे व्यक्त करता ह, "हमारा भाग्य तलवार की धार पर टिका है।" इसका परिणाम यह ह कि उसका कथन पूव विचारित नही, बल्कि अवसर की आवश्यकता से प्रेरित जान पडता ह।

थुक्युदिदेस मे यह गुण और भी अधिक मात्रा मे पाया जाता है। वह विपयय द्वारा ऐसी वस्तुओ को बडे साहस और कौशल के साथ अलग अलग कर देता है जो प्रकृति से ही सहज सयुक्त एव अविभाज्य हैं। देमोस्थेनेस थुक्युदिदेस के समान निपुण नही है, किन्तु वह इस अलकार का सर्वाधिक उपयोग करता है और विपयय-प्रयोग के द्वारा प्रचण्ड वेग का, एव अ-पूर्वकल्पित भाषण का बडा गहरा प्रभाव उत्पन्न करता है, और इस प्रकार वह श्रोताओ को अपने लम्बे लम्बे विपययो मे खीचता ले जाता है। वह प्राय उस विचार को, जिसे अभी अभिव्यक्त करना आरम्भ किया था, अधूरा ही छोड देता है और उधर ऊपर से असम्बद्ध एव अस्वाभाविक प्रतीत होनेवाली किसी स्थिति मे एक के बाद एक अनेक तथ्यो का, वाक्य के बीच में ही, चाहे जिस बाह्य क्षेत्र से लाकर, ढेर लगा देता है। इस प्रकार श्रोताओ को यह भय होने लगता है कि कही उसके शब्दो का समूचा ढाचा भरभराकर गिर न पडे, और वे वक्ता के द्वारा अभिव्यक्त सकट को स्वय भी बडी व्यग्रता एव सहानुभूति के साथ अनुभव करने के लिए विवश हो जाते हैं। फिर अचानक ही एक लम्बे व्यवधान के बाद वक्ता उपयुक्त स्थान पर, अर्थात् अन्त मे दीर्घ प्रतीक्षित निष्कर्ष रख देता है और इस प्रकार विपयय के इस अत्यन्त साहसिक एव कठिन प्रयोग द्वारा कही अधिक गहरा प्रभाव उत्पन्न करने मे सफल होता है। इस प्रयोग के अत्यधिक उदाहरण मिलते हैं, अत उनका उल्लेख यहा आवश्यक नही है।

(२३)

जैसा तुम जानते ही हो, सचयन*, रूप परिवतन† तथा सार‡ नामक अलकार सावजनिक वक्तृता के उत्तम साधन हैं और उनसे औदाय तथा औदात्त्य और आवेग के प्रत्येक रूप मे बडी सहायता

*एक्युमुलेशन्स †पेरिफ्रासिस ‡क्लाइमेक्स

मिलती है। और फिर, कारक, काल, पुरुष, वचन और लिंग के परिवर्तन से विषय के प्रतिपादन मे कितनी विविधता और सजीवता आती है! जहा तक वचन का प्रश्न है, मैं यह कहूगा कि शैली केवल अथवा मुख्यत उन शब्दो के प्रयोग से ही अलकृत नही होती जो रूप की दृष्टि से एकवचन होने पर भी अर्थ की परीक्षा करने पर बहुवचन सिद्ध होते हैं। जैसे

असख्य जन-समूह सहसा—
समुद्र-तट पर दूर-दूर तक एकत्र चीख उठा 'थु-थु वह रहा।

अधिक ध्यान देने की बात यह है कि कभी-कभी (एकवचन के लिए) बहुवचन का प्रयोग कानो पर और भी गहरा असर डालता है और बहुवचन द्वारा अभिव्यक्त सख्याधिक्य से हमे प्रभावित करता है। सोफोक्लेस मे ओइदिपुस (ईडिपस) के शब्द ऐसे ही हैं

ओह परिणय परिणय,
तुमने मुझे जन्म दिया और जन्म देकर
उसी बीज को सबके सामने लाए
और इस भाति प्रकट कर दिया
कि पिता, भाई पुत्र सारे एक ही हैं एक रक्त हैं
वधुए, माताए, पत्निया सब एक ही हैं,।—
आह, कैसे-कैसे लज्जाजनक काम
मानवजाति मे होते हैं!

यह समूची गणना एक व्यक्तिवाचक सज्ञा द्वारा अभिव्यक्त की जा सकती है—एक ओर ओइदिपुस (ईडिपस) और दूसरी ओर जोकास्ता[१९]। किन्तु बहुवचन के प्रयोग विस्तार से दुर्भाग्य के आघातो को भी बहुसख्यक रूप प्रदान करने मे सहायता मिलती है। बहु सख्यता का ऐसा ही प्रभाव इस पक्ति मे भी है

हक्तोर[२०] और सरपेदान[२१] आगे बढते हुए आए।

यही बात अथेनी नागरिको से सम्बद्ध प्लतोन (प्लेटो) के उस अनुच्छेद मे भी है जिसे हम अन्यत्र उद्धृत कर चुके हैं। "क्योकि न

कोई पेलोपे न केदमो, न कोई ऐग्युप्ति और न दनाइ, और न अन्य विदेशी समुदाय की कोई सन्तान हमारे साथ रहती है, बल्कि हमारा देश हर प्रकार के विदेशी मिश्रण से मुक्त शुद्ध यूनानियों का है।" यह स्वाभाविक ही है कि व्यक्तिवाचक संज्ञाओं को इस प्रकार एक के बाद एक एकत्रित कर देने से कोई भी विषय हमारे कानों को कहीं अधिक सप्रभाव प्रतीत होगा। किन्तु यह ऐसे ही प्रसंगों में करना चाहिए जहां विषय के अंतर्गत विस्तारणा, अतिरिक्त वर्णन, अतिशयोक्ति अथवा आवेग के लिए—इनमें से किसी एक या अधिक के लिए—अवकाश हो, क्योंकि हम सभी जानते हैं कि इस प्रकार की अतिविभूषित शैली बहुत ही आडम्बरपूर्ण लगती है।

(२४)

इसके विपरीत बहुसंख्यक वस्तुओं को एकवचन द्वारा प्रकट करने से कभी कभी बड़ा उदात्त प्रभाव उत्पन्न हो जाता है। देमोस्थेनेस कहता है, "उसके बाद सारा पैलोपोनेसस[1] परस्पर विरुद्ध हो गया।" "और जब फ्रयुनिख़ुस[2] ने 'मिलेतुस की पराजय' नामक नाटक प्रस्तुत किया तो फिर सारे प्रेक्षागृह की आंखों से आंसुओं का प्रवाह उमड़ उठा।" बहुसंख्या को एकवचन द्वारा प्रकट करने से सामूहिक एकता का भाव अधिक पूर्णता के साथ प्रकट होता है। मेरे विचार से उपर्युक्त दोनों उदाहरणों में उचित सौन्दर्य का एक ही कारण है। जहां शब्द एकवचन में हो और उन्हें बहुवचनवाची अर्थ प्रदान किया जाए, वहां यह अप्रत्याशित आवेग का चिह्न है, और जहां शब्द बहुवचन में हो, वहां बहुत सी वस्तुओं के लिए एक सुन्दर एकवचनवाची शब्द का प्रयोग करने से, विपरीत परिवर्तन के कारण, आश्चर्य उत्पन्न होता है।

(२५)

यदि आप बीती बातों को इस प्रकार प्रस्तुत करें मानो वे वत-

मान मे हो रही हा तो आपकी कहानी आख्यान न रहकर वास्तविकता का रूप धारण करने लगती है। क्सेनोफोन मे इसका एक उदाहरण मिलता है। वह कहता है, "एक आदमी क्युरस" के घोडे के नीचे गिर जाता है, और जिस समय घोडा उसको कुचलना चाहता है, उस समय वह अपनी तलवार उसके पेट म भोक देता है। घोडा पिछले परो पर खडा हो जाता है और क्युरस को अपनी पीठ स गिरा देता है।" इस तरह की रचना युक्युदिदेस की एक अपनी विशेषता है।

(२६)

इसी तरह पुरुष का परिवतन भी अत्यन्त प्रत्यक्ष प्रभाव उत्पन्न करता है और प्राय श्रोता को यह अनुभव होने लगता है जसे वह पुरुष विपत्तिया के बीच चल रहा हो।

तूने कहा था कि उपचित शक्ति और स्वस्थ शरीर लेकर

वे सब युद्ध म भिड गए, ऐसे प्रचड वेग से वे गपप के लिए झपटे।

और फिर अरतुस की यह पक्ति

उस महीने म तूफानी सागर म अपना जहाज कभी मत छोडना।

यही बात हेरोदोतुस मे भी पाई जाती है "ऐलिफन्तीनि" (ऐलिफेण्टाइन) नगर से तू ऊपर की ओर यात्रा करेगा और तब एक समतल मदान म पहुचेगा, और इस मैदान को पार करने के बाद तू एक और जहाज म सवार होगा और उसमे दो दिन तक यात्रा करेगा, और तब तू एक बडे शहर मे पहुचेगा जिसका नाम है मेरोए"।" क्या तुम यह अनुभव नही करते कि किस प्रकार वह कल्पना मे तुम्हे उस प्रदेश मे से ले जाता है और ऐसा लगता ह मानो कान से सुनी बात को तुम सचमुच ही आखो से देख रहे हो। इस प्रकार प्रत्यक्ष व्यक्तिगत रूप म सम्बोधन के द्वारा श्रोता जसे स्वय घटनास्थल पर उपस्थित हो जाता है। ऐसा ही प्रभाव तब भी होता

है जब यह लगे कि तुम हरएक से नही बल्कि किसी एक व्यक्ति से बात कर रहे हो

पर त्युडेइस तुम उसे न जानते होगे जिसके लिए वह वीर लडा था।

यदि तुम अपने श्रोता को व्यक्तिगत रूप मे सबोधित कर उसे सजग रखो तो वह अधिक उत्तेजित और एकाग्रचित्त रहेगा और सक्रिय रूप से तुम्हारे साथ सहयोग करेगा।

(२७)

कभी कभी ऐसा भी होता है कि लेखक किसी अन्य व्यक्ति के बारे मे बात करते करते एकाएक बात को काटकर स्वय अपने-आपको उस व्यक्ति का रूप दे देता है। इस प्रकार के अलकार से आवेग का विस्फोट प्रकट होता है

तब त्रिग्रवासियो (नायवासियो) से दूर तक गूजती हुई ललकार के साथ हैक्तोर ने कहा

रक्त रजित विजय के सामान को छोड, तुरत ही जहाजो पर दौड जाओ
और जिस भी मै जहाज से बाहर अकेला देखूगा
उसके प्राणो की निश्चय ही खैर नही।

यहा, उचित ही, कवि वर्णन का भार अपने ऊपर ही लेता है पर बीच मे अचानक ही बिना कोई चेतावनी दिए वह धमकी भरे शब्द क्रुद्ध नायक के मुह मे रख देता है। इस स्थल पर यदि वह यह कहता कि 'हैक्तोर ने ऐसा ऐसा कहा' तो कथन सर्वथा निर्जीव हो जाता। यहा पर वर्णन के इस अचानक परिवर्तन ने वर्णनकर्ता (वक्ता) के परिवर्तन को एकदम पीछे छोड दिया है। इसलिए इस अलकार का उस प्रसग मे प्रयोग अच्छा रहता है जहा किसी स्थिति की तीव्रता के कारण लेखक के लिए विराम का अवसर नही रहता और वह वर्णन मे पुरुष परिवर्तन करने के लिए लाचार हो जाता है। इसका एक उदाहरण हेकातउस[१] मे भी मिलता है "कीइक्स[१] ने उस मामले को बडा महत्त्व दिया और तुरन्त ही हैराक्लेस के वशजो को चले जाने की आज्ञा दी, क्योकि मै तुम्हारी सहायता नही कर

सकता। इसलिए यदि तुम स्वय बर्बाद होना और मुझे कष्ट देना नही चाहते तो किसी दूसरे देश मे चले जाओ।" देमोस्थेनेस ने अरिस्तोगेइतोन[११] के वर्णन मे भावनाओ का त्वरित घात प्रतिघात दिखाने के लिए पुरुष के परिवर्तन का ईषत् भिन्न प्रकार से प्रयोग किया है। वह पूछता है, "और क्या तुममे से कोई भी इस नीच और निर्लज्ज आदमी के जघन्य कार्यो को देखकर घृणा अथवा क्रोध से क्षुब्ध नही होगा, वह आदमी जो—तू ओ अभागे आदमी, तू, जिसकी वाणी पर कोई प्रतिबन्ध नही है, कोई ऐसी अगला नही है जो कभी खुल सके।" भाव को इस प्रकार अधूरा ही छोडकर वह अचानक ही बात काट देता है और क्रोध मे आकर एक ही पदावली को दो भिन्न 'पुरुषो' के प्रयोग के द्वारा चीर देता है। "वह जो—ओ तू अभागे आदमी।" इस भाति यद्यपि उसने अपना सबोधन बदल दिया है और लगता है कि अरिस्तोगेइतोन को उसने छोड दिया है तो भी भावावेग की तीव्रता द्वारा वह अपने कथन को कही अधिक प्रबल रूप मे अरिस्तोगेइतोन के प्रति व्यक्त करता है। यही बात पनेलोपे[७] के शब्दो के बारे मे है

> हे दूत, अब कौन सा सवाद परिणय प्रार्थियो के दल से लेकर तू आया है ?
> ओद्युस्सेउस की कुमारियो को उनका देव-तुल्य आदेश देने
> कि अपने सभी काय छोड दें और उनके लिए भोज का प्रबंध करें ?
> मैं चाहती हू कि उनके समस्त प्रणय निवेदन का यह अतिम दिन हो,
> तुम्हारा दावतो का आज अत हो जाए, तुम्हारे विलासोत्सव का यह अतिम क्षण हो,
> तुम जो एकसाथ एकत्र होकर हमारे समस्त पदार्थो का भक्षण कर जाते हो
> सुधी तेलेमाखस के भाडार का, मानो तुमने कभी सुना ही न हो,
> अपने बचपन के दिनो म, बहुत पहले, अपने पिताओ का यह
> प्रशस्ति-कथन कि ओद्युस्सेउस कितना भला था !

(२८)

इस विषय मे कि पर्यायोक्ति से उदात्त की सिद्धि मे सहायता मिलती है या नही, मेरे विचार से किसीको कोई शका न होगी। क्योकि जिस प्रकार सहायक वाद्यो से किसी राग का सौदर्य निखर उठता है उसी प्रकार पर्यायोक्ति सामान्य उक्ति के साथ समजित हो जाती है और उससे अभिव्यक्ति के सौदर्य की अभिवृद्धि होती है, विशेषकर यदि वह अत्युक्तिपूर्ण और अनमेल न हो वरन् प्रिय और सयत हो। प्लतोन (प्लेटो) मे इसका एक सुदर उदाहरण मिलता है। अन्त्येष्टि के अवसर पर अपने एक भाषण के प्रारम्भ मे उसने कहा है "वास्तव मे उन्होने हमसे अपनी समुचित श्रद्धाजलि प्राप्त कर ली है और उसीका उपभोग करते हुए वे सावजनिक रूप मे समस्त देश के साथ और व्यक्तिगत रूप म अपने-अपने सम्बन्धियो के साथ नियत माग पर चल पडे हैं।" यहा मृत्यु को वह 'अपना नियत माग' और परम्परागत सस्कारो को 'सावजनिक रूप मे समस्त देश के साथ' कहता है। इन शब्दो के प्रयोग द्वारा उसने धारणा के प्रभाव मे क्या कोई साधारण सी ही वृद्धि की है? क्या यह सच नही है कि सवथा अनलकृत शब्दावली से प्रारम्भ कर उसने सम्पूण उक्ति को सगीतमय बना दिया है और उसमे पर्यायोक्ति से उत्पन्न मधुर लय का, स्वर सगति की भाति, समावेश कर दिया है? और क्सेनोफोन कहता है, "आप श्रम को सुखी जीवन का मागदशक मानते हैं। आपने अपनी आत्माओ मे सबसे उत्तम और योद्धाओ के लिए सबसे उपयुक्त गुण को प्रश्रय दिया है। क्योकि आप अन्य किसी वस्तु की अपेक्षा प्रशसा से अधिक प्रसन्न होते हैं।" यहा 'आप परिश्रम करने के लिए तयार हैं' इन शब्दो की अपेक्षा 'आप परिश्रम को सुखी जीवन का मागदशक मानते हैं' आदि शब्दो का प्रयोग कर और शेष वाक्य का भी इसी प्रकार विस्तार कर क्सेनोफोन ने अपनी प्रशस्ति को उदात्त रूप दे दिया है। यही हरोदोतुस की अप्रतिम पदावली के

विषय मे भी सही है "जिन स्वयुथी लोगो (सिथियावासियो) ने मन्दिर का ध्वस किया था, उन्हे देवी ने शाप देकर पुसत्वहीन कर दिया।"

(२६)

किन्तु यदि विवेकपूर्वक उपयोग न किया जाए तो पर्यायोक्ति खतरनाक, सचमुच बहुत ही खतरनाक चीज है। बिना सोचे समझे उपयोग करने से वह एकदम प्रभावशून्य हो जाती है—एक प्रकार का खोखलापन और व्यर्थ का वाग्विस्तार मात्र शेष रह जाता है। यही कारण है कि प्लातोन (प्लेटो) पर भी—जो सदा अलकारमयी भाषा का प्रयोग करता है, वरन् कभी कभी अनावश्यक रूप मे भी करता है—यह आक्षेप किया जाता है क्योकि अपनी "*विधि सहिता" नामक पुस्तक मे वह कहता है, "न सोने और न चादी के कोष को नगर मे प्रतिष्ठित होने देना चाहिए।" आलोचक कहता है कि यदि वह पशु रखने का निषेध कर रहा होता तो स्पष्ट ही मेषधन और गोधन का उल्लेख करता। पर भाई तेरेन्तिआनुस, उदात्त तत्त्व और अलकार प्रयोग के विषय मे हमारा यह प्रासगिक विवेचन काफी लम्बा हो चुका है। क्योकि ये सभी बातें शैली को आवेग एव सजीवता प्रदान करती हैं और आवेग का औदात्त्य के साथ वैसा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है जसा चरित्र चित्रण का मनोरजन के साथ होता है।

(३०)

किन्तु सत्य यह है कि किसी विवेचन मे विचार और पद विन्यास अधिकतर एक दूसरे के आश्रय से विकसित होते हैं, इसलिए अब हमे पद विन्यास सम्बन्धी कुछ ऐसे विषयो पर विचार कर लेना चाहिए जो अभी तक उपेक्षित रहे हैं। निस्सदेह जो लोग इस बात को भली

---

*लाज

भाति जानते हैं, उन्ह विस्तारपूर्वक यह समझाना अनावश्यक ही है कि उपयुक्त एव प्रभावक शब्दावली श्रोता को आश्चर्यजनक रूप मे आकर्षित और अभिभूत कर लेती है। ऐसी शब्दावली की सभी वक्ता और लेखक कामना करते हैं क्योंकि उसीके द्वारा प्रत्यक्ष रूप मे किसी रचना मे, सुन्दरतम मूर्तियो की भाति, भव्यता, सौन्दय, मादव, गरिमा, ओज और शक्ति तथा अन्य श्रेष्ठ गुणो का आविर्भाव होता है और मृतप्राय वस्तुए जीवन्त हो उठती हैं। जसा मैंने कहा, इन सबका उल्लेख करना अनावश्यक ही है क्योंकि सुन्दर शब्द ही वास्तव मे विचार को विशेष प्रकार का आलोक प्रदान करते हैं। किन्तु इस बात का सकेत किया जा सकता है कि गरिमामयी भाषा का उपयोग सवत्र नही करना चाहिए क्योंकि छोटी मोटी बातो को बडी बडी और भारी-भरकम सज्ञा देना किसी छोटे से बालक के मुह पर पूरे आकारवाला त्रासद अभिनय का मुखौटा लगा देने के समान है। किन्तु काव्य मे और

(३१)

ओजस्वी और प्रवाहपूण, यही अनाक्रेओन[९२] की इस पक्ति के बारे मे सत्य ह "उस थ्रेक्सि की घोडी की परवाह अब मैं नही करता।" इस दष्टि से ही थेओपोम्पस[९३] की मौलिक उक्ति सराहनीय है। शब्द और वस्तु के बीच पूण सामजस्य होने के कारण वह मुझे अत्यन्त अभिव्यजनापूण प्रतीत होती ह किन्तु तो भी कैकिलिउस ने किसी अज्ञात कारण से उसे सदोष माना है। थेओपोम्पस कहता है "फिलिप मे बातो को पेट मे पचा लेने की बडी शक्ति थी।" इस प्रकार का सीधा सादा कथन कभी-कभी भव्य भाषा की अपेक्षा कही अधिक साथक होता है, क्योंकि साधारण जीवन से उपलब्ध होने के कारण वह तुरन्त समझ मे आ जाता है और परिचित होने के कारण अधिक ग्राह्य होता है। इसलिए 'पेट मे पचा लेना' आदि शब्दो का प्रयोग ऐसे व्यक्ति के बारे मे बहुत ही सफल

रहता है जो अपना मतलब गाठने के लिए लज्जाजनक और गदी वातो को भी धीरज के साथ हसी खुशी सहन कर लेता है। यही बात हेरोदोतुस के शब्दो के बारे मे है जहा वह कहता है "क्लिओमेनेस पागल हो गया, एक छोटी सी तलवार से अपने ही शरीर की धज्जिया करने लगा और अ त मे उसने सारे शरीर के टुकडे टुकडे कर अपनी हत्या कर ली।" अथवा "प्युथेस तब तक जहाज पर बराबर लडता रहा जब तक उसके टुकडे टुकडे नहीं कर दिए गए।" ग्रामीण स्पश होने पर भी ये वाक्य अपनी व्यजकता के कारण ग्राम्य दोष से बच जाते हैं।

(३२)

इसके अतिरिक्त (रूपको) लाक्षणिक प्रयोगो की सख्या के सम्ब ध में कैकिलिउस इस मत का समथक जान पडता है कि दो या अधिक से अधिक ती न रूपको से ज्यादा एकसाथ नहीं प्रयुक्त होने चाहिए। वास्तव म अ य प्रसगो की भाति इस विषय मे भी देमोस्थेनेस आदर्श है। रूपको के प्रयोग का उचित अवसर तब होता है जब आवेग उ मद प्रवाह की भाति उमडता चला आता ह और अपने अबाध वेग मे मानो अलकारो की एक विपुल शृङ्खला को बहा लाता है। वह कहता है "ऐसे लोग जो घणित चाटुकार हैं, जिनमे से प्रत्येक ने अपनी पितृभूमि को खण्डित किया है, जि होने अपनी स्वाधीनता को पहले फिलिप के हाथ और अब सिक दर के हाथ बेच दिया है, जो अपने सुख को अपनी उदर पूर्ति और अपनी निम्नतम इच्छाओ की तृप्ति से मापते हैं और जि होने अपनी उस स्वाधीनता तथा निरकुश शासन से अपनी उस मुक्ति को तिलाजलि दे दी है जो पिछले युग के यूनानियो के लिए शिवत्व का मानदण्ड और आदश थी ।" यहा देशद्रोहियो के प्रति वक्ता के आक्रोश ने रूपको की सख्या पर परदा डाल दिया है। इसी भाव से अरस्तू[७४] और थेओफ्रास्तुस[७५] ने यह लिखा है कि 'मानो', 'जैसा', 'यदि यह कहा

जाए तो' और 'यदि यह कहना उचित समझा जाए तो', आदि वाक्यांशो से प्राय अतिशयपूर्ण रूपको को सयत करने म सहायता मिलती है, क्योकि उनका कहना है कि, इस प्रकार के विशेषक शब्दो से उक्ति का औद्धत्य कुछ कम हो जाता है। मैं इस विचार से सहमत हू किन्तु तो भी, जैसाकि मैं अन्य अलकारो के प्रसग मे कह चुका हू, रूपको की बहुलता अथवा अतिरजना के लिए मैं यह मानता हू कि प्रबल और अवसर के उपयुक्त आवेग एव भव्य औदात्य ही समुचित उपचार है। क्योकि आवेग के स्वरूप मे ही यह निहित है कि वह अपने उद्दाम प्रवाह मे सामने की प्रत्येक वस्तु को बहाकर ले जाए या एकदम असाधारण प्रयोग उसके लिए प्राय अनिवार्य हो जाए। वह श्रोता को इस बात का अवकाश नही देता कि रूपको की सख्या की आलोचना कर सके, क्योकि वह स्वय वक्ता के आवेश मे बह जाता है। इसके अतिरिक्त साधारण वस्तुओ के चित्रण तथा वर्णन मे जितना प्रभाव रूपक-श्रृङ्खला के प्रयोग का पडता है उतना किसी और युक्ति का नही पड सकता। इसीके द्वारा क्सेनोफोन की कृतियो मे मानव शरीर की रचना का इतना भव्य चित्रण किया गया है, और प्लतोन (प्लेटो) का चित्रण तो और भी दिव्य है। प्लतोन (प्लेटो) कहता है कि मनुष्य का सिर एक दुर्ग है, सिर और वक्ष के बीच मे, गर्दन डमरूमध्य की भाति स्थित है। वह कहता है कि पृष्ठ-वशिया नीचे धुरी की भाति स्थापित की गई हैं। सुख-भोग का लोभ मनुष्य को बुराई की ओर आकृष्ट करता है और जिह्वा उस स्वाद की कसौटी है, हृदय नाडियो की ग्रथि है और उस रक्त का स्रोत है जो चारो ओर वेग से चक्कर काटता रहता है, यह हृदय शरीर के रक्षागृह मे स्थित है। जिन पथो स होकर रक्त इधर-उधर दौड़ता है उन्हे वह वीथियो का नाम देता है। वह कहता है कि देवताओ ने हृदय की धडकन को कुछ सहायता देने के लिए (यह धडकन तब उत्पन्न होती है जब किसी सकट की आशका हो

और जब कोई आक्रोश उसे उत्तेजित कर दे, क्योंकि तब वह अत्यत उत्तप्त हो उठता है) फेफडो की स्थापना की है। ये फेफडे सुकुमार और रक्तहीन होते हैं और उनमे भीतर छिद्र होते हैं जो एक प्रकार से आघात को सहारने का काय करते हैं, ताकि जिस समय आन्तरिक आक्रोश उबलने लगे तो हृदय किसी कोमल वस्तु से ही टकराए और क्षति से बच जाए। इच्छाओ के निवास स्थान की तुलना वह अन्त पुर से करता है और क्रोध की पुरुषो के आवास से। प्लीहा को वह भीतरी भागो का माजन वस्त्र मानता ह जहा से वह विभिन्न स्रावो से भरकर बडा भारी आकार धारण करती है। इसके बाद देवताओ ने इस ढाचे के ऊपर मासल त्वचा का चदोवा ताना और उसे बाह्य आघातो से रक्षा करने का साधन बनाया जसे वह कोई रोएदार तकिया हो। रक्त को वह मास का पोषक तत्त्व कहता है। "पोषण के लिए उन्होने शरीर का सिंचन किया और उसमे ऐसी नालिया काटकर बनाई जसी किसी उद्यान मे बनाते हैं जिससे शरीर की छोटी छोटी नालियो म नाडियो की धाराए इस प्रकार प्रवाहित हो सकें मानो किसी अक्षय स्रोत से निकली हो।" अन्त मे वह कहता है कि आत्मा के बधन जहाज के बधनो की भाति ढीले रखे गए हैं और उसे स्वच्छन्द विचरण करने की अनुमति है। इस तरह के उदाहरण असख्य मिल सकते हैं पर उपर्युक्त उदाहरण यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि अलकारमयी भाषा मे बडी स्वाभाविक शक्ति होती है और रूपक उदात्त तत्त्व की प्रतिष्ठा मे सहायक होते हैं—साथ ही भावेगदीप्त एव वणनात्मक प्रसगो मे उनकी साथकता सबसे अधिक होती है। किन्तु यह स्पष्ट है, यद्यपि मैं इस बात की यहा विस्तार से चर्चा नही करना चाहता, कि उक्ति के अन्य अलकारो की भाति रूपको के (लाक्षणिक) प्रयोग मे भी अतिचार की सम्भावना है। इसके लिए तो स्वय प्लतोन (प्लेटो) की बडी आलोचना होती ह क्योंकि वह प्राय शब्दो के मद मे चूर होकर बडे

कक्श और तीखे लाक्षणिक प्रयोगो तथा अतिरजनापूर्ण रूपको की भरमार करने लगता है। उसने लिखा है "क्योकि इस बात पर आसानी से ध्यान नही जाता कि एक नगर को प्याले की तरह होना चाहिए जिसमें उन्मत्त मदिरा डालते ही उफन उठती है, पर यदि कोई दूसरा सयमी देवता अपनी सत्सगति से उसका सस्कार कर दे तो वह एक उत्तम और निमद पेय बन जाती है।" आलोचको का कहना है कि जल के लिए 'सयमी देवता' और मिलाने के लिए 'सस्कार करना' आदि कवि की भाषा है, और वह भी ऐसे कवि की जिसकी कल्पना मे सयम का अभाव है। किन्तु ऐसे ही दोषो को पकडकर कैकिलिउस ने अपनी रचनाओ मे ल्युसिअस[1] की प्रशसा की है और यहा तक कह दिया है कि ल्युसिअस प्लतोन (प्लेटो) से अत्यन्त श्रेष्ठ लेखक था। ऐसा करके वह भावावेश की दो अन्ध प्रवृत्तियो का शिकार हुआ है। ल्युसिअस के प्रति उसे अपने आपसे भी अधिक प्रेम है, किन्तु जितना ल्युसिअस से प्रेम है, उससे कही अधिक प्लतोन (प्लेटो) से घृणा है। वास्तव में वह विवाद की उत्तेजना मे बह जाता है और उसकी प्रतिज्ञाए भी, यद्यपि उसका अपना यही विचार था, स्वीकार्य नहीं हैं। क्योकि वह प्लतोन (प्लेटो) को प्राय भूल करनेवाला मानकर वक्ता ल्युसिअस को सर्वथा निर्दोष मान लेता है। किन्तु सत्य यह नही है, बल्कि उसके आसपास भी नही है।

(३३)

आओ, अब हम किसी एक ऐसे लेखक को लें जो वास्तव मे दोषरहित और आलोचना से परे हो। इस स्थल पर क्या यह सामान्य प्रश्न उठाना उपयुक्त नही है कि हम कविताओ और गद्य-रचनाओ मे किस बात को अधिक महत्त्व देना चाहिए गरिमा को जिसके साथ कुछ न कुछ दोष भी लगे हो अथवा ऐसी सफलता को जो साधारण हो पर साथ ही हर तरफ से ठीक ठाक और सर्वथा

और जब कोई आक्रोश उसे उत्तेजित कर दे, क्योकि तब वह अत्यत उत्तप्त हो उठता ह) फेफडो की स्थापना की है। ये फेफडे सुकुमार और रक्तहीन होते हैं और उनमे भीतर छिद्र होते हैं जो एक प्रकार से आघात को सहारने का काय करते हैं, ताकि जिस समय आन्त रिक आक्रोश उबलने लगे तो हृदय किसी कोमल वस्तु से ही टकराए और क्षति से बच जाए। इच्छाओ के निवास-स्थान की तुलना वह अन्त पुर से करता है और क्रोध की पुरुषो के आवास से। प्लीहा को वह भीतरी भागो का माजन वस्त्र मानता है जहा से वह विभिन्न स्रावो से भरकर बडा भारी आकार धारण करती है। इसके बाद देवताओ ने इस ढाचे के ऊपर मासल त्वचा का चदोवा ताना और उसे बाह्य आघातो से रक्षा करने का साधन बनाया जैसे वह कोई रोएदार तकिया हो। रक्त को वह मास का पोषक तत्त्व कहता है। "पोषण के लिए उन्होने शरीर का सिंचन किया और उसमे ऐसी नालिया काटकर बनाई जैसी किसी उद्यान मे बनाते हैं जिससे शरीर की छोटी छोटी नालियो मे नाडियो की धाराए इस प्रकार प्रवाहित हो सकें मानो किसी अक्षय स्रोत से निकली हो।" अन्त मे वह कहता है कि आत्मा के बधन जहाज के बधनो की भाति ढीले रखे गए हैं और उसे स्वच्छन्द विचरण करने की अनुमति है। इस तरह के उदाहरण असख्य मिल सकते हैं पर उपर्युक्त उदाहरण यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि अलकारमयी भाषा मे बडी स्वाभाविक शक्ति होती ह और रूपक उदात्त तत्त्व की प्रतिष्ठा मे सहायक होते हैं—साथ ही आवेगदीप्त एव वर्णनात्मक प्रसगो मे उनकी सार्थकता सबसे अधिक होती है। किन्तु यह स्पष्ट है, यद्यपि मैं इस बात की यहा विस्तार से चर्चा नही करना चाहता, कि उक्ति के अन्य अल-कारो की भाति रूपको के (लाक्षणिक) प्रयोग मे भी अतिचार की सम्भावना ह। इसके लिए तो स्वय प्लतोन (प्लेटो) की बडी आलो चना होती ह क्योकि वह प्राय शब्दो के मद मे चूर होकर बडे

कर्कश और तीखे लाक्षणिक प्रयोगो तथा अतिरंजनापूर्ण रूपकों की भरमार करने लगता है। उसने लिखा है "क्योंकि इस बात पर आसानी से ध्यान नहीं जाता कि एक नगर को प्याले की तरह होना चाहिए जिसमें उन्मत्त मदिरा डालते ही उफन उठती है, पर यदि कोई दूसरा सयमी देवता अपनी सत्सगति से उसका सस्कार कर दे तो वह एक उत्तम और निर्मद पेय बन जाती है।" आलोचकों का कहना है कि जल के लिए 'सयमी देवता' और मिलाने के लिए 'सस्कार करना' आदि कवि की भाषा है, और वह भी ऐसे कवि की जिसकी कल्पना म सयम का अभाव है। किन्तु ऐसे ही दोषों को पकडकर कैकिलिउस ने अपनी रचनाओं मे ल्युसिअस[1] की प्रशसा की है और यहा तक कह दिया है कि ल्युसिअस प्लतोन (प्लेटो) से अत्यन्त श्रेष्ठ लेखक था। ऐसा करके वह भावावेश की दो अन्ध प्रवृत्तियों का शिकार हुआ है। ल्युसिअस के प्रति उसे अपने आपसे भी अधिक प्रेम है, किन्तु जितना ल्युसिअस से प्रेम है, उससे कही अधिक प्लतोन (प्लेटो) से घृणा है। वास्तव मे वह विवाद की उत्तेजना मे बह जाता है और उसकी प्रतिज्ञाए भी, यद्यपि उसका अपना यही विचार था, स्वीकार्य नहीं हैं। क्योंकि वह प्लतोन (प्लेटो) को प्राय भूल करनेवाला मानकर वक्ता ल्युसिअस को सर्वथा निर्दोष मान लेता है। किन्तु सत्य यह नहीं है, बल्कि उसके आसपास भी नहीं है।

(३३)

आओ, अब हम किसी एक ऐसे लेखक को लें जो वास्तव म दोषरहित और आलोचना से परे हो। इस स्थल पर क्या यह सामान्य प्रश्न उठाना उपयुक्त नहीं है कि हम कविताओं और गद्य-रचनाओं मे किस बात को अधिक महत्त्व देना चाहिए गरिमा को जिसके साथ कुछ न कुछ दोष भी लगे हो अथवा ऐसी सफलता को जो साधारण हो पर साथ ही हर तरफ से ठीक-ठाक और सर्वथा

दोष मुक्त हो ? इतना ही नही, यह प्रश्न भी उठाया जा सकता है कि साहित्य मे किसका महत्त्व अधिक मानना चाहिए बहुसख्यक गुणो का अथवा उच्चकोटि के गुणो का ? ये प्रश्न औदात्त्य के विवेचन मे सवथा उपयुक्त हैं और उनका समाधान होना अत्यन्त ही आवश्यक है। जहा तक मेरा प्रश्न ह, मैं यह बात अच्छी तरह जानता हू कि महान प्रतिभा निर्दोषता से बहुत दूर होती है, क्योकि सर्वागीण शुद्धता मे अनिवायत क्षुद्रता की आशका रहती ह और औदात्त्य मे, जैसाकि विपुल सौभाग्य मे भी होता है, कुछ न कुछ छिद्र अवश्य रह जाता ह। इसमे सन्देह नही कि निम्न और मध्यम श्रेणी के व्यक्ति नियमत विनिपात से मुक्त होते हैं और अपेक्षा कृत अधिक सुरक्षित रहते हैं क्योकि वे कभी भी शिखर पर चढने का साहस नही करते। दूसरी ओर महान प्रतिभावान व्यक्तियो के लिए उनकी महानता के कारण ही सदा बडा खतरा बना रहता ह। दूसरे, मैं यह भी जानता हू कि मानव चरित्र के दुबल पक्ष पर आसानी से ध्यान जाता है और दोषो की स्मृति मिटाए नही मिटती, पर गुणो को हम बहुत शीघ्र ही भूल जाते हैं। मैंने स्वय भी होमेरस (होमर) तथा अन्य श्रेष्ठ लेखको मे अनेक त्रुटिया ढूढ निकाली हैं और उनकी भूलो को देखकर मुझे कष्ट ही हुआ ह। तो भी मैं यह नही मानता कि वे भूले जान बूझकर की गई हैं, वे तो ऐसी आकस्मिक भूलें हैं जो एक प्रतिभावान व्यक्ति की सहज असावधानी और उपेक्षा वृत्ति के कारण रह गई हैं। इसीलिए मैं अपने इस मत पर दढ हू कि उच्चकोटि के गुणो को, चाहे समस्त रचना मे उनके उच्च स्तर का निर्वाह न भी हो तव भी तुलनात्मक दष्टि से प्रथम स्थान दिया जाना चाहिए और किसी कारण से नही तो केवल आतरिक ऊर्जा क कारण ही उन्हे यह स्थान दिया जाना चाहिए। यह मैं मानता हू कि अपोलोनिउस** अपनी 'अरगोनाउतिका' नामक रचना मे ऐसे कवि के रूप मे हमारे सामने आता ह जो कभी त्रुटि

नही करता, और इसी प्रकार थेओक्रिटुस[16] का गोचारण काव्य कुछेक बाह्य वस्तुओ को छोडकर सवत्र ही अत्यन्त सरस है। किन्तु यह सब होते हुए भी क्या तुम अपोलोनिउस की अपेक्षा होमेरस (होमर) होना अधिक पसन्द नही करोगे ? इसी प्रकार एरातास्थेनेस[18] की उस छोटी सी कविता 'एरीगाने' को ले लो जो सवथा दोषरहित है। किन्तु क्या इसी कारण एरातोस्थेनेस को आरखीलोखुस से बडा कवि माना जाएगा जिसकी रचनाओ मे काव्य सामग्री का प्रभूत किन्तु अव्यवस्थित भण्डार भरा पडा है और दिव्य प्रतिभा का ऐसा अपूव विस्फोट है जिसे नियमो मे बाधकर रखना कठिन है ? एक और उदाहरण लो। क्या प्रगीत काव्य मे तुम पिंदार[6] की अपेक्षा बक्युलिदेस[61] को अधिक श्रेष्ठ मानोगे और त्रासदी के क्षेत्र मे सोफोक्लेस की अपक्षा खिग्रास का इग्रान[62] होना पसन्द करोगे ? यह सही है कि बक्युलिदेस और इओन उस वग के लेखक हैं जिन्होने अपने काव्य के रूप को खूब सवारा और निखारा है—उनकी रचना सवथा निर्दोष और लालित्यपूण है। दूसरी ओर पिंदार और सोफोक्लेस कभी कभी तो अपनी प्रतिभा की तीव्र ज्वाला म प्रत्येक वस्तु को भस्म कर देते हैं किन्तु प्राय अकारण ही बुझ जाते हैं और बहुत बुरी तरह असफल सिद्ध होते हैं। पर तो भी क्या कोई समझदार व्यक्ति इओन की सारी की सारी रचनाओ को मिलाकर अकेले 'ओइदिपुस' (ईडिपस) नाटक के भी बराबर मान सकता है ?

(३४)

यदि सफल रचना की परख सच्ची कसौटी पर न होकर गुणो की सख्या से होने लगे तो इस दृष्टि से ह्युपेरिदेस को दमोस्थेनेस से सवथा श्रेष्ठ मानना पडेगा। क्योकि देमोस्थेनेस की अपेक्षा उसमे स्वर वैचित्र्य और गुणो की सख्या कही अधिक है वह एक ऐसे खिलाडी की भाति है जो हर क्षेत्र मे मोर बनते बनते रह जाता है। हर प्रतियोगिता म उसे पहला स्थान अपने प्रतिद्वद्वी के लिए

छोड देना पडता है जब कि सभी साधारण लेखको की तुलना मे पहला स्थान उसीका रहता है। अब ह्य पेरिदेस रचना कौशल को छोड अय समस्त विषयो म न केवल देमोस्थेनेस का ही अनुकरण करता है वरन् ल्युसिअस के भी अनेक गुणो और विशेषताओ का उसने अपूव मात्रा मे अजन कर लिया है। क्योकि आवश्यकता पडने पर वह सहज रूप मे बात करता है और देमास्थेनेस की भाति सभी उक्तियो मे उसका स्वर एक सा अपरिवर्तित नही रहता। साथ ही मधुर-मनहर रूप म ईषत् उत्तेजना का स्पश देते हुए चरित्र चित्रण करने की शक्ति भी उसे प्राप्त है। वाग्वदग्ध्य के भी असरय प्रमाण उसकी रचनाओ मे मिलत हैं—अत्यन्त परिष्कृत अपहास, अभिजात सहजता, वक्तापूण उक्तियो की प्रतियोगिता मे नम्य निपुणता, परिहास जो कुरयात अथेनी शली के से रुचिहीन और अभद्र न होकर प्रसङ्ग से सहज उद्भूत हैं, चतुर उपहास, प्रभूत हास्य शक्ति, सुनिर्दिष्ट तीखा व्यग्य और समस्त रचना को एक प्रकार का अननुकरणीय सौदय प्रदान करने की क्षमता इत्यादि। वह स्वभाव से ही दया भाव उत्पन्न करने मे बहुत दक्ष है, किसी कथा का वणन वह बहुत सहज रुप से कर सकता है और अपने लचीले स्वभाव के कारण बीच बीच म अवान्तर विषयो की चर्चा वह बहुत ही सरलता से कर लेता है (जसा कि, उदाहरण के लिए, लेतो की कहानी के काव्यात्मक वणन से प्रकट होता है)। इसके अतिरिक्त अत्येष्टि-भाषण को तो उसने प्रदशनात्मक शली म कदाचित अद्वितीय सफलता के साथ प्रस्तुत किया है।

दूसरी ओर देमोस्थेनेस चरित्र चित्रण मे निपुण नही है, उसमें सहज गुण नही है। नम्यता अथवा प्रदशनात्मकता तो उसमे नही के बराबर है, जिन गुणो की चर्चा ऊपर की गई है, उसम वे सभी अपेक्षाकृत कम हैं। जहा वह प्रयत्नपूवक परिहासमय अथवा मनोरजक बनने का प्रयत्न करता है, वहा हास्य उत्पन्न करने की जगह स्वय ही

हास्यास्पद बन जाता है और जब वह सौदय के समीप पहुचने का यत्न करता है, तो उससे और भी दूर चला जाता है। यदि वह फयुने अथवा अथेनोगेनेस के विषय म सक्षिप्त भाषण लिखने का प्रयत्न करता तो उसको तुलना मे ह्यपेरिदेस और भी अधिक श्रेष्ठ जान पडता। कि तु ह्य परिदेस मे चाहे कितने ही गुण क्यो न हो उसमे औदात्त्य का अभाव है। उसकी रचनाए किसी सयत व्यक्ति की धीर-सयत उक्तिया हैं जो श्रोताओ को प्रभावित नही करती, ह्यपेरिदेस को पढकर किसीको त्रास का अनुभव नही होता। किन्तु देमोस्थेनेस मानो किसी भण्डार से निकालकर ऐसे गुणो की झडी लगा देता है जो भव्यतम उदात्त भाव से सम्बद्ध हैं और जो सर्वोत्कृष्ट कोटि के हैं, जसे ओजस्वी वाग्मिता, जीव त आवेग, प्रचुरता, तत्परता, जहा उपयुक्त हो वहा गति तथा ऐसी शक्ति और वेग जिनकी समता करना सम्भव नही। मेरा विचार है कि इन प्रबल गुणो को जि हें हम ईश्वर-प्रदत्त मान सकते हैं (क्योकि उ हे मानवीय कहना उचित नही होगा), अपने भीतर आत्मसात् कर इस प्रकार वह सभी परवर्ती लेखको को ऐसी विशेपताओ के क्षेत्र मे भी पछाड देता है जो स्वय उसम नही हैं, और प्रत्येक युग के वक्ताओ को अपनी गर्जना और विद्युद्वेग के द्वारा परास्त कर देता है। वज्रपात का बिना पलक झपाए सामना करना तो आसान है, कि तु एक के बाद एक तीव्र गति से होनेवाले उसके भाव विस्फोट को अविचल दृष्टि से देखना सम्भव नही।

(३५)

किन्तु जैसा मैंने पहले कहा, प्लतोन (प्लेटो) और ल्युसिअस मे एक और भी अ तर है। क्योकि गुणो की उत्कृष्टता मे ही नही, वरन् उनकी सख्या मे भी ल्युसिअस प्लतोन (प्लेटो) की अपेक्षा अत्य त हीनतर है। साथ ही जहा वह गुणो मे प्लतोन (प्लेटो) से बहुत पिछडा हुआ है, वही दोषो के मामले म वह उससे कही अधिक

बढ चढकर है। तो फिर उन महामानव लेखको के सामने ऐसा कौन-सा तथ्य था कि उन्होने रचना के श्रेष्ठ गुणो पर ध्यान केंद्रित करने के साथ-साथ सवव्यापी परिशुद्धता का तिरस्कार किया ? इस विषय मे और बहुत सी बातो के अतिरिक्त एक बात यह भी थी कि प्रकृति ने हम मनुष्यो को नीच और जघन्य पशु होने के लिए नही बनाया है बल्कि जब वह हमे जीवन के क्षेत्र मे और इस विराट् विश्व मे प्रविष्ट करती है, मानो किसी बडी सभा मे प्रविष्ट कर रही हो––इस उद्देश्य से कि हम इस विराट पूणता का दशन कर और गौरव के उत्कट अभिलाषी बनें—उसी समय जो कुछ भी हमसे अधिक उदात्त और दिव्य है, उसके प्रति एक अदम्य आकषण वह हमारी आत्मा के भीतर अकुरित कर देती है। यही कारण ह कि सम्पूण विश्व भी मानव मस्तिष्क के विचार और चिन्तन के लिए पर्याप्त नही लगता और प्राय हमारी कल्पना दिगन्त को पार कर जाती है, यदि हम अपने चारो ओर के जीवन पर दष्टि डालकर यह देख सकें कि उसमे अद्भुत, महान और सुन्दर पदार्थो की कितनी प्रचुरता है तो हमें अपने जन्म का प्रयोजन समझने मे देर नही लगेगी। यही कारण ह कि स्वभाव से ही हम छोटी छोटी धाराओ की प्रशसा नही करते चाहे वे कितनी ही उपयोगी और निमल क्यो न हो, बल्कि नील नदी, डेन्यूब अथवा राइन और इन सबसे अधिक महासागर से प्रभावित होते हैं। इसी प्रकार हम अपने द्वारा प्रज्वलित छोटी-सी अग्नि शिखा को (यद्यपि उसके प्रकाश की पवित्रता चिरकाल से यथावत् सुरक्षित ह) स्वर्गिक ज्वालाओ की अपेक्षा अधिक सभ्रम से नही देखते, यद्यपि वे प्राय अन्धकार मे छिपी रहती हैं, न हम उसे ऐतना के ज्वालामुखियो को अपक्षा अधिक विस्मयकारी मानते हैं जो अपने विस्फोट मे अनलगत से बडे बडे पत्थर एव वहदाकार शिलाखण्ड बाहर फेंकते रहते हैं और कभी-कभी जिनके गभ से विशुद्ध और अमिश्रित आतमो म ज्वाला ा ाद प्रवाह उमडता चला आता

है। इन सब विपयो म हम यह वह सकते हैं वि जो कुछ भी उपयोगी तथा ग्रावश्यक है उसे मनुष्य साधारण मानता है, अपने सम्भ्रम का भाव तो वह उन पदार्थों के लिए ही सुरक्षित रखता है जो विस्मय विमूढ कर देनेवाले हैं।

(३६)

ग्रब जहा तक साहित्य मे उदात्त की ग्रभिव्यक्ति का प्रश्न है, जिसमे—जैसा कि कभी-कभी प्रकृति मे होता है—गरिमा का उपयोगिता तथा हित से पथक ग्रस्तित्व सम्भव नही है, यह वात तुरत ही ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि इस कोटि के लेखक निर्दोपता से बहुत दूर होते हैं तो भी वे सब नश्वरता से ऊपर उठ जाते हैं, ग्रौर सभी गुण जहा यह सिद्ध करते हैं कि उनके धारण करनेवाले मनुष्य हैं वहा ग्रौदात्त्य लेखक को ईश्वर के ऐश्वय के समीप ले ग्राता है, जहा दोप मुक्त होने पर ग्रालोचनाग्रो से छुटकारा मिलता है, वहा गरिमा ग्रादर ग्रौर विस्मय को जन्म देती है। इसके ग्रागे ग्रौर कुछ कहने की ग्रावश्यकता नही कि इन महान लेखको म से प्रत्येक उदात्त के केवल एक ही सुखद स्पर्श से ग्रपने समस्त दोपो का परिमाजन कर देता है, सबसे महत्त्वपूण वात यह है कि यदि होमेरस (होमर), देमोस्थेनेस, प्लतोन (प्लेटो) तथा ग्रन्य महत्तम लेखको के सारे दोपो को चुनकर एकत्र कर लिया जाए तो भी वे सब मिलाकर इन महापुरुपो द्वारा हर क्षेत्र मे प्राप्त उपलब्धियो की तुलना म ग्रत्यत ग्रल्प वरन् सवथा नगण्य सिद्ध होगे। यही कारण है कि युग युग की परवर्ती पीढियो ने—जिनके निणय के विरुद्ध स्वय ईर्ष्या भी विकृति का ग्रारोप नही लगा सकती—निजयापहार लाकर उन्हे ही ग्रर्पित किए हैं, जिनकी रक्षा वे ग्राज तक करती रही हैं ग्रौर, जान पडता है, तव तक करती रहेगी जव तक—

इस भूमि की नदिया वहती रहगी ग्रौर उसके ऊचे ऊचे वक्ष
वढते ग्रौर फलते फूलते रहेंगे।

कि तु जो लेखक यह मानता है कि दोषपूण कोलोस्सस[¹] पोल्युक्लेइतुस[¹] द्वारा निर्मित कु तधर (की मूर्ति) से श्रेष्ठ नही है, उसके उत्तर मे अ य बहुत-सी दूसरी बातो के अतिरिक्त इतना कहना आवश्यक है कि कला म अधिक से अधिक परिशुद्धता (निर्दोषता) की प्रशसा होती है और प्रकृति की रचनाओ मे गरिमा की, और मनुष्य की वाकशक्ति का वरदान प्रकृति से प्राप्त होता है। मूर्तियो मे मानव की अनुरूपता ही आवश्यक होती है, पर भाषण मे, जसा कि मैंने कहा, हम ऐसे गुण की अपेक्षा करते हैं जो मानवोपरि हो। तो भी, और यहा मैं फिर वही बात कहना चाहता हू जो मैंने इस विवेचन के प्रारम्भ मे कही थी क्योकि निर्दोषता की सिद्धि अधिकतर कला के फलस्वरूप प्राप्त होती है और उत्कष (सदा समरूप न रहने पर भी) उदात्त भावना का परिणाम होता है, कला का उपयोग हर प्रकार से प्रकृति का सहायक होता है , क्योकि इन दोनो के योग से ही सम्पूणता की उपलब्धि निश्चित हो सकती है।

इन समस्त प्रश्नो के विषय म हम इ ही निणयो पर पहुचने के लिए बाध्य हैं कि तु हर आदमी अपने मन के अनुकूल मत रखने का अधिकारी ह।

(३७)

रूपका से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध (इस विषय की ओर हमारा फिर लौटना आवश्यक है) तुलनाए और उपमाए हैं—अ तर केवल इतना ही है

(३८)

ऐसी अतिशयोक्तिया (ऊहात्मक उक्तिया) जसे "जब तक तुम अपने मस्तिष्क को अपनी एडियो से कुचलकर न चलो।" इसलिए यह जानना आवश्यक ह कि प्रत्येक प्रसग मे सीमा कहा निर्धारित की जाए। क्योकि कभी कभी निर्दिष्ट सीमा के परे चले

जाने से अतिशयोक्ति अलकार नष्ट हो जाता है और ऐसी उक्तियो को यदि बहुत खीचा जाए तो उनका तनाव कम हो जाता है और कभी कभी तो सवथा विपरीत प्रभाव ही पडने लगता है। उदाहरण के लिए इसोक्रेतेस प्रत्येक वस्तु को बडे विस्तार के साथ वणन करने की महत्त्वाकाक्षा के कारण ही विचित्र बालेयता का शिकार बन गया। उसकी 'विरुदावली' की विषयवस्तु यह है कि यूनान की समद्धि मे लकेदाइमोन की अपेक्षा अथेना (एथेंस) का योगदान अधिक है। किन्तु फिर भी अपने भाषण के शुरू मे वह इन शब्दो का प्रयोग करता है "इसके अतिरिक्त भाषा मे ऐसी शक्ति है कि उसके द्वारा उदात्त वस्तुओ को नीचा गिराना और क्षुद्र वस्तुओ को गौरव प्रदान करना सम्भव है, इसी प्रकार भाषा के द्वारा पुरानी बातो को नये ढग से प्रस्तुत किया जा सकता है और हाल की घटनाओ का प्राचीन पद्धति से वणन किया जा सकता है।" यहा यह पूछा जा सकता है, "तो इसोक्रतेस, क्या आप इसी प्रकार से लकेदाइमोन और अथेना (एथेंस) के इतिहास की घटनाओ को अदल-बदल करना चाहते हैं ? क्योकि भाषा की शक्ति के गुणगान मे उसने एक प्रकार से अपने श्रोताओ को पहले से ही इस बात की चेतावनी दे दी है कि वे उसके शब्दो पर भी विश्वास न करें। इसलिए शायद, जैसा कि हम साधारणत अलकारो के प्रसग मे कह चुके हैं, ऐसी अतिशयोक्तिया ही सर्वोत्तम होती हैं जिनके अतिशयोक्ति होने पर हमारा ध्यान ही न जाए। ऐसा तभी होता है जब उनका प्रयोग प्रबल भाव के दबाव के कारण किसी महान सकट के प्रसग म किया जाए, जैसा कि थुक्युदिदेस सिसली मे मर-मिटनेवाले लोगो के सम्बन्ध मे करता ह। वह कहता है "स्युराकुसवासी वहा से उतरकर पानी के किनारे आ पहुचे और विशेषकर उन लोगो का वध करने लगे जो नदी के भीतर थे। इससे नदी का जल तुरन्त ही दूषित हो गया। किन्तु, कीचड और

रक्त मिल जाने पर भी लोग उसे निगलते रह और अधिकाश के लिए तो वह तब भी इस योग्य था कि उसके लिए सघप करते रहें।" रक्त और कीचड मिला हुआ एक चुल्लू जल ऐसी वस्तु थी जिसके लिए लोग सघष करना उचित समझे, इस बात को उस चरम सकट-क्षण के भाव की तीव्रता द्वारा ही विश्वसनीय बनाया जा सका है। यही बात उस उद्धरण के विषय म है जिसमे हेरोदोतस थर्मोप्युल मे खेत रहनेवाले वीरो का वह वणन करता है। वह कहता है "इस स्थान पर बबरो ने उन लोगो को दफना दिया जो अपनी कृपाणो के द्वारा—जिनके पास कृपाणें बची थी—और अपने हाथ और मुह (दाता) के द्वारा रक्षा कर रहे थे।" यहा आपके मन म सशस्त्र व्यक्तियो के विरुद्ध 'मुह (दाँतो) से सघष करना' और तीरो के द्वारा दफनाया जाना' जसी उक्तियो का प्रतिवाद करने की इच्छा हो सकती है किन्तु यह वणन विश्वसनीय लगता है क्योकि यहा घटना की उद्भावना अतिशयोक्ति अलकार के लिए की गई नही जान पडती, वरन अतिशयोक्ति ही घटना से सहज रूप मे उद्भूत होती हुई जान पडती है। क्योकि जसा मैं सदा ही कहता आया हू, भावातिरेक के स्तर तक पहुचनेवाले काय और आवेग प्रत्येक उद्धत उक्ति को सहज मदुल बनाने के लिए पर्याप्त हैं। यही कारण ह कि किसी प्रहसन के शब्द कौतुक, चाहे वे निरथकता की सीमा तक ही क्यो न पहुच जाए, सदा उपयुक्त प्रतीत होते हैं क्योकि वे प्रेक्षक का मनाविनोद करते हैं। उदाहरण के लिए—

उसका खेत किसी स्पार्टावासी की एक चिट्ठी से भी छोटा था।

क्योकि हास्य भी एक भाव ह जिसका आधार आनन्द है। अतिशयोक्ति का उपयोग छोटी और बडी दोनो प्रकार की वस्तुओ के वणन म होता है क्याकि दोनो म ही अतिशय का तत्त्व सामान्य रूप से विद्यमान रहता ह। और, एक अथ मे उपहास वस्तुओ की क्षुद्रता के विस्तार का ही नाम है।

(३६)

औदात्त्य की सिद्धि मे सहायक जिन तत्त्वो का वणन हमने आरम्भ मे किया था, उनमे से पाचव का विवेचन करना अभी शेष है। यह तत्त्व है—किसो निश्चित नम से शब्दो की योजना करना। इस विषय मे हम दो निबन्धो म काफी विस्तार से सभी सम्बधित बातो की चर्चा कर चुके हैं। यहा हम अपने प्रस्तुत विवेच्य विषय को ध्यान मे रखते हुए केवल उसी बात का उल्लेख करेंगे जो एकदम आवश्यक है, अर्थात् इस बात का कि समजित शब्द योजना न केवल प्रत्यय और आनन्द की ही उद्बुद्धि करती है वरन उदात्त उक्ति और भावावेग का भी अद्भुत साधन है। उदाहरण के लिए बासुरी की तान श्रोताओ के हृदय मे भावो का सचार कर एक प्रकार से उन्हे विभोर एव भावाविष्ट कर देती है, श्रोता चाहे सगीत से पूणत अनभिज्ञ हो तो भी उसे एक प्रकार की लयपूण गति प्रदान कर लय और राग के अनुसार झूमने के लिए बाध्य करती है। और इसी प्रकार जैसा कि तुम जानते ही हो सारगी (हाप) के स्वर, यद्यपि अपने आपम उनका चाहे कोई अथ न हो, ध्वनियो की विविधता, कपन और समवेत सगीत के अतगत परस्पर समन्वय द्वारा, प्राय श्रोताओ के ऊपर एक जादू सा कर देते हैं, किन्तु ये सब मनुष्यो को प्रभावित करने के बाह्य उपकरण अथवा कृत्रिम विधि-मात्र हैं, और जसा मैं कह चुका हू, मानव स्वभाव की सहज क्रियाए नही। किन्तु रचना भाषा के उस सामजस्य का ही नाम है जिसका प्रकृति ने मनुष्य के स्वभाव मे ही आरोपण किया है और जो न केवल उसकी श्रवणेंद्रिय को बल्कि उसकी आत्मा तक को प्रभावित करती है। यह रचना शब्दो, विचारो, कार्यों, सुन्दरता तथा राग के अनेक रूपो की अभिव्यक्ति करती है जो सब हमारे जन्म के साथ जन्म लेते हैं और विकास के साथ विकसित होते हैं। साथ ही वह अपने स्वरो के मिश्रण और परिवतन के द्वारा उपस्थित

लोगो के मन म उसी भाव का सचार करने का प्रयत्न करती है जो वक्ता के मन मे हैं—सदा ही श्रोता-वग को उस भावानुभूति मे समभागी बनाती है और पदावली के परस्पर सह वि यास के द्वारा समजित विधान प्रस्तुत करती है। ऐसी अवस्था मे क्या यह मानना उचित नही होगा कि सामजस्य इ ही सब साधनो के द्वारा हमे प्रलुब्ध करता है और अनिवाय रूप से हमे भव्यता, गरिमा, ऊर्जा तथा अपने भीतर निहित प्रत्येक भाव की ओर प्रवत्त करता है और इस प्रकार हमारे मन के ऊपर पूण अधिकार प्राप्त कर लेता है। कि तु ऐसे विषयो पर विवाद करना जि ह साधारणत स्वीकार किया जाता है, मूखता है, क्योकि अनुभव अपने आपमे पर्याप्त प्रमाण है। एक ऐसी धारणा का उदाहरण, जो सामा यत उदात्त मानी जाती है और वास्तव मे स्तुत्य है ही, हमे देमोस्थेनेस की इस आज्ञप्ति मे मिलता है "इस आज्ञप्ति से नगर पर छाया हुआ सकट बादल की तरह छट गया।" इस पक्ति का सौ दय जितना विचार के कारण है उतना ही स्वर सामजस्य के कारण भी क्योकि विचार को लगातार गुरु लघु लघु (ऽ।।) क्रम से युक्त त्रिमात्रिक पदो से सम्प न लय मे प्रकट किया गया है जो अत्यत भव्य और उदात्त की सष्टि के लिए बहुत ही अनुकूल है, यही कारण है वीर छद का निर्माण इसीके आधार पर हुआ है—जो हमारा सवश्रेष्ठ छद है। (इस पक्ति मे शब्दो की क्रम योजना सवथा उपयुक्त है) क्योकि यदि इस वाक्य के शब्दो का वि यास अ य किसी भी प्रकार से किया जाए—उदाहरणाथ, यदि यह कहे कि "इस आज्ञप्ति से बादल की भाति सामयिक सकट छट गया।"—इतना ही नही, यदि आप केवल एक शब्द ही निकाल दें, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि सामजस्य को औदात्त्य के साथ कितनी अभि नता है। यह पक्ति अपने मूल रूप मे चार मात्राओवाली दीघ लय से आरम्भ होती है और एक भी मात्रा को निकालकर पक्ति का सक्षेपण करते ही उसका

औदात्य विक्षत हो जाता है। इसी प्रकार इसके विपरीत यदि इसम मात्राए वढा दी जाए तो भी, अथ मे अतर न होने पर भी, कानो पर वैसा प्रभाव नही पडता क्योकि मात्रा-विस्तार से पक्ति की आकस्मिक गरिमा की शक्ति और तनाव नष्ट हो जाता है।

(४०)

किसी उक्ति के औदात्य का एक प्रमुख कारण, मानव शरीर की रचना की भाति ही, उसके विभिन्न अगो के निवेषण मे है, जिनमे अलग अलग रहने पर कोई विशेषता नही होती किन्तु सव मिलकर एक समग्र और सम्पूण शरीर की रचना करते हैं। इसी प्रकार गरिमा के तत्त्वो को यदि एक दूसरे से अलग कर दिया जाए तो उनके साथ औदात्य भी इधर-उधर विखर जाता ह किन्तु जव उन सवको मिलाकर एकान्वित कर दिया जाता है और फिर सामजस्य की एक शृखला मे वाध दिया जाता है तो वे अपनी वर्तुलता के कारण ही कण मधुर हो जाते हैं, और वहुत-से अनुच्छेदो मे औदात्य एक प्रकार से बहुलता की ही देन होता ह। किन्तु हम यह बहुत कुछ स्पष्ट कर चुके हैं कि ऐसे बहुत से लेखक और कवि भी, जिनमे स्वाभाविक औदात्य का गुण नही है और जिनमे शायद ऊर्जा की भी कमी ह, गौरव एव विशिष्टता प्राप्त कर लेते हैं और क्षुद्रता से मुक्त जान पडते हैं, यद्यपि अधिकतर वे ऐसे साधारण तथा लोकप्रिय शब्दो का ही प्रयोग करते हैं जिनके साथ उनका अपना किसी प्रकार का प्रबल मानसिक ससग नही होता और जिनको वे केवल एकसाथ जोडने और गूथने भर का काय करते हैं। इस वात के उदाहरण अन्य वहुत-से लोगो के अतिरिक्त फिलिस्तुस[८५] की रचनाओ में, अरिस्तोफनेस के कुछ अवतरणो म और एउरिपिदेस (यूरिपिडीस) की अधिकाश रचनाओ मे मिल जाएगे। एउरिपिदेस की एक रचना मे हराक्लेस उस दृश्य के वाद, जिसमे कि वह

अपने बच्चा का वध करता है, निम्नलिखित शब्दो का प्रयोग करता है

मेरा जीवन दुःखो से भर चुका है, अब और के लिए अवकाश नही।

यह उक्ति बहुत ही साधारण है किन्तु पक्ति रचना की उपयुक्तता के कारण यह उदात्त बन गई है। यदि आप इस वाक्य की रचना किसी भिन्न प्रकार से करें तो यह बात पूरी तरह स्पष्ट हो जाएगी, क्योंकि एउरिपिदेस अपनी आविष्कार शक्ति के कारण नही बल्कि अपनी रचना शक्ति के कारण श्रेष्ठ कवि है। एक अन्य स्थल पर एक नान्दो द्वारा दिरके के चीर दिए जाने का वर्णन है

जिधर भी वह घूमता था
तेज़ी से चक्कर काटता हुआ,
उधर ही वह घसीटता और उठाकर फेंकता जाता था,
स्त्री को, पत्थरा को, सिन्दूर वृक्षो का
निरन्तर एक के बाद दूसरे को।

यह कल्पना अपने आपमे उत्तम है किन्तु वह इस बात से और भी सशक्त बन गई है कि इन पक्तियो मे सामजस्य की स्थापना जल्दी जल्दी मे, रेल पेल कर नही की गई है, वरन् शब्द एक-दूसरे के लिए उपस्तभ का काम करते हैं, विरामो से सहारा प्राप्त करते हैं और अत मे दृढ आधारयुक्त औदात्य की सृष्टि करते हैं।

(४१)

औदात्य के लिए भाषा के छिन्न भिन्न, और अस्तव्यस्त प्रवाह से अधिक घातक वस्तु दूसरी नही है। यह विशेषता लघु लघु* (॥) और गुरु लघु (ऽ।)† क्रम से युक्त द्विमात्रिक पदो तथा दुहरे गुरु लघु (ऽ।) क्रम से युक्त चतुर्मात्रिक पद-रचना मे मिलती है जिसमे भाषा लगभग नृत्य सगीत के स्तर पर उतर आती है, क्योंकि अत्यधिक लयपूर्ण सभी रचनाए तुरन्त ही कृत्रिम तथा अत्यन्त सुकुमार और अपनी ऊपरी चमक की एकरसता

* पाइरिक्स † ट्रोकी।

के कारण सर्वथा आवेगहीन प्रतीत होने लगती हैं, और सबसे बुरी बात तो यह है कि जिस प्रकार घटिया गाने श्रोता का ध्यान विषयवस्तु से हटाकर अपनी ओर खींच लेते हैं, उसी प्रकार अत्यधिक लयपूर्ण शैली शब्दों के भाव का नहीं, वरन् केवल लय का प्रेषण करती है। वास्तव में कभी कभी तो श्रोता पंक्ति का अन्त पहले से ही जानने के कारण वक्ता के साथ साथ अपने पैर पटकने लगते हैं और नृत्य की भांति पहले से ही कदम उठाने लगते हैं। इसी प्रकार ऐसे शब्द भी औदात्य से शून्य होते हैं जो एक दूसरे से बहुत सटे हुए हों, छोटे छोटे अक्षरों में विभक्त हों, और नितान्त विषमता तथा कर्कशता के द्वारा मानो लकड़ी की कीलों से एक-दूसरे के साथ जड़े हों।

(४२)

साथ ही उक्ति की अत्यधिक संक्षिप्तता से भी औदात्य का ह्रास होता है, क्योंकि बहुत ही संकीर्ण घेरे में विचार को ठूंसने से भी गरिमा नष्ट हो जाती है। यह आरोप समास शैली के विषय में नहीं है वरन् ऐसी उक्ति के विषय में है जो सर्वथा क्षुद्र और छोटे छोटे भागों में खण्डित हो क्योंकि शब्दों की अल्पता अर्थ को संकुचित करती है जब कि समास गुण सीधा अपने निशाने पर चोट करता है। इसके विपरीत यह भी स्पष्ट है कि वाग्विस्तार भी आडम्बर को जन्म देता है। प्रत्येक वस्तु के अनुचित विस्तार के विषय में यही बात है।

(४३)

अभिव्यक्ति की क्षुद्रता से भी औदात्य की क्षति होने की आशंका रहती है। उदाहरण के लिए, हेरोदोतस ने तूफान का पूर्ण विस्तार के साथ अद्भुत प्रभावशाली वर्णन किया है किन्तु उस वर्णन में निस्संदेह कुछ ऐसे शब्द प्रयुक्त हैं जो विषय के गौरव के अनुकूल नहीं

हैं। उदाहरण के लिए, एक पद है "जब समुद्र उबलने लगा"। यहा 'उबलना' शब्द बहुत कुछ औदात्त्य को बाधित करता है क्योंकि उसकी ध्वनि अच्छी नही है। इसी प्रकार एक स्थान पर वह लिखता है कि "हवा थक गई," और मस्तूल से चिपके रहनेवालो का "अप्रिय अन्त" हुआ। यहा 'थक गई' पद ग्राम्य है और उसम गौरव का अभाव है इसी प्रकार 'अप्रिय' शब्द इतनी बडी दुघटना के लिए सवथा अनुपयुक्त है। इसी प्रकार थेग्रोपोम्पस मिस्र पर फारस के शाह के आक्रमण का अदभुत वणन करता है, पर बाद मे सारे प्रभाव को कुछ हलके शब्दो के प्रयोग से नष्ट कर देता है। वह कहता है "एशिया के किस नगर ने और किस जाति ने उस महान राजा के पास अपने दूत नही भेजे ! दुनिया की कौन सी सुदर से सुदर और अमूल्य से अमूल्य वस्तु अथवा कलाकृति उसकी सेवा मे अर्पित नही की गई ? बगनी या सफेद रग की अथवा जरी के काम की कीमती चादरो और चोगो की विपुल राशि का विचार कीजिए। सभी आवश्यक उपकरणो से सज्जित सोने के अगणित मण्डपो, परदो और अत्यन्त मूल्यवान गद्देदार आसन्दियो की कल्पना कीजिए। सोने और चादी की कीमती रकाबिया, प्याले और शराब मिलाने के बतन, जिनम से अनेक मे बहुमूल्य रत्न जडे हुए थे और बाकी बडे ही परिश्रम से, बहुत-सा धन व्यय करके बनाए गए थे, इन सबके अतिरिक्त यूनानी और बबर जातियो के राशि राशि अस्त्र शस्त्र, असख्य भारवाही तथा वध के लिए खिला पिलाकर पुष्ट किए गए पशु, मनो मसाले, और बहुत से बोरो और थैलो म भरे हुए थी पत्र तथा अय सभी प्रकार के आवश्यक द्रव्य, हर प्रकार के पशुओ का नमकीन गोश्त आदि आदि पदार्थों के इतने बडे बडे ढेर लग गए थे कि दूर से आनेवाले लोग उन्हे पहाड और टीले समझ बठते थे।" स्पष्ट ही इस वणन मे लेखक उदात्त से निम्न स्तर की ओर बढता गया है जबकि इसके विपरीत उसे उच्च से उच्चतर स्तर की ओर

वढना चाहिए था। समस्त सामग्री के अपूव वणन के बीच मे ही वह थैलो, बोरो और मसालो का भी उल्लेख कर देता है जिससे ऐसा प्रभाव मन पर पडता है कि मानो नानवाई की दुकान हो। यदि इन सब सुदर पदार्थों के बीच—सोने के प्यालो और रत्नजटित पात्रो, चादी की तश्तरियो और सोने के मण्डपो के बीच—कोई व्यक्ति थैले और बोरे लाकर रख दे, तो जैसे इस कार्यवाही से हमारी आखो को कष्ट पहुचेगा, उसी प्रकार प्रसग विरुद्ध शब्द भी कुरूपता उत्पन्न करते हैं और भाषा पर कलक-से प्रतीत होते हैं। जिस प्रकार वह यह कहता है कि उन सारी चीजो के ढेर पहाड-जैसे दिखाई पडते थे, उसी प्रकार वह सम्पूण दृश्य का मोटे तौर पर वणन कर सकता था। वह यह कहता, "भोजन के आस्वाद और उपभोग के प्रत्येक आवश्यक पदाथ को असख्य पशु, ऊट और गाडिया ढोकर ला रही थी," या यो कहता, "स्वादिष्ट भोजन तथा शरीर के सुख के लिए आवश्यक प्रत्येक द्रव्य तथा अन्न की राशिया उपस्थित थी," या यदि उसे इन सब वस्तुओं का ऐसा स्पष्ट वणन ही करना था तो वह यह भी कह सकता था, "रसोई के लिए आवश्यक सभी सुदर पदार्थ विद्यमान थे।" जब तक किसी प्रवल कारण से अनिवाय ही न हो जाए तब तक उदात्त प्रसगो मे हमें निकृष्ट और कुत्सित भाषा का प्रयोग नही करना चाहिए, बल्कि उचित यही है कि हम विषय के अनुकूल शब्दो का प्रयोग करें। इस विषय मे हमें मनुष्य की शिल्पी प्रकृति का अनुकरण करना चाहिए, जिसने हमारे शरीर के निकृष्ट अगो को अथवा मल उत्सग आदि की इद्रियो को सामने व्यक्त कर नही रखा है वरन जहा तक सम्भव हुआ है, उन्हें छिपाने का प्रयत्न किया है और, जसा कि जेनोफोन का कथन है, उन इद्रियो को प्रकृति ने सुदूरतम पृष्ठभूमि मे रखा है ताकि समूचे शरीर का सौन्दय नष्ट न हो जाए। पर इतना काफी है—क्षुद्रता को जन्म देनेवाली प्रत्येक वस्तु को एक एक कर गिनाने की आवश्यकता नही है।

क्योकि जब हम पहले ही उन गुणो का उल्लेख कर चुके हैं जो शैली को भव्य और उदात्त रूप प्रदान करते हैं, तो यह स्पष्ट ह कि उनके विपरीत गुण प्राय उसे निकृष्ट और क्षुद्र ही बनाएगे।

(४४)

प्रिय तेरंतिग्रानुस, (ज्ञान के प्रति तुम्हारे प्रेम को ध्यान मे रखते हुए मुझे यह कहने मे कोई सकोच नही हैं कि) अभी उस एक प्रश्न का स्पष्टीकरण बाकी है जिसे एक दार्शनिक ने हाल ही मे प्रस्तुत किया है। वह कहता ह "मुझे इस बात पर आश्चर्य है, और मेरा विश्वास ह, और भी कई लोगो का है, कि हमारे युग मे ऐसे व्यक्ति मौजूद हैं जिन्हे दूसरो को समझाने-बुझाने की अधिक से अधिक प्रतिभा प्राप्त है, जो सावजनिक जीवन के सर्वथा उपयुक्त हैं, प्रखरबुद्धि और तत्पर हैं, और जिनका भाषा की समद्धि पर विशेष अधिकार है, तो भी एकाध अपवाद को छोड उदात्त और अलौकिक प्रतिभा के व्यक्ति अब उत्पन्न नही होते। हमारे युग मे उदात्त वाणी का इतना भारी और सवव्यापी अभाव है।" आगे वह कहता है "क्या हम इस बात का यह घिसा पिटा कारण स्वीकार करना पडगा कि प्रतिभा की धात्री जनत त्र-व्यवस्था ही है और साहित्यिक क्षमता का उत्थान पतन जनतन्त्र और केवल जनतन्त्र के साथ होना रहता है? क्योकि यह कहा जाता है कि स्वतन्त्रता मे उन्नतमना व्यक्तियो की कल्पना को परिपुष्ट करने और आशा को प्रेरणा देने की शक्ति ह और जहा स्वतन्त्रता है वहा परस्पर प्रतियोग की उत्सुकता तथा मूध य स्थान प्राप्त करने की स्पर्धा सवत्र प्रकट होती है। इसके अतिरिक्त लोकप्रिय शासन के अन्तगत सभी के लिए पुरस्कारो का द्वार मुक्त रहने के कारण वक्ता से मानसिक गुण निरन्तर अभ्यास से प्रखरतर होते रहते हैं, मानो रगड खाकर चमक उठे हो, और राज्य के कार्यो की प्रेरक स्वतन्त्र भावना के आलोक से जगमगाते रहते हैं (जसा कि उचित ही है)।" आगे चलकर वह

कहता है, "आज ऐसा जान पडता है कि हम न्यायपरायण दासवृत्ति का पाठ सीखने की ही बाल्यावस्था मे हैं और उसकी रूढि-रीतियो तथा आचार व्यवहार मे पूरी तरह डूबे हुए हैं। अभी हमारे विचार बहुत ही बालोचित और सुकुमार हैं और अभी हमने वक्तृत्व कला के उस सुन्दर और उर्वर स्रोत का (मेरा अभिप्राय स्वतन्त्रता से है) आस्वादन नही किया। परिणामत 'उदात्त चाटुकारो' के अतिरिक्त हमारा कोई और रूप सम्भव नही है।" उसके विचार से यही कारण है कि कोई दास कभी वक्ता नही बनता, चाहे अन्य सभी गुण उसे क्यो न प्राप्त हो। दासो मे भाषण स्वातन्त्र्य के जकडे होने के चिह्न, एक प्रकार से कारागार के तथा प्रहारो के अभ्यस्त व्यक्ति के चिह्न तुरन्त प्रकट होने लगते हैं। होमेरस (होमर) का कथन है "दासता का एक दिन हमारे आधे पौरुष को छीन लेता है।" आगे वह लिखता है "बौनो को रखने के पिंजडे (यदि जो कुछ मैं सुनता हू, वह सही है तो), जिन्हे आम तौर पर 'नानी' कहा जाता है, न केवल अपने भीतर बन्द प्राणियो के विकास मे ही बाधा डालते हैं बल्कि शरीर को जकडनेवाले बन्धनो के द्वारा उन्हे सचमुच कृश कर देते हैं। यही कारण है कि किसीने सभी प्रकार की दासता को (चाहे वह कितनी ही न्याय-सगत क्यो न हो) आत्मा का पजर और लोक कारागार कहा है।" मैंने उसे यह उत्तर दिया, "श्रीमन, जिस युग मे हम रहते हैं उसके दोष निकालना आसान है और मानव स्वभाव के अनुकूल भी। किन्तु विचार कीजिए, कही यह तो सत्य नही है कि महान प्रतिभा को ससार की शान्ति नही, बल्कि यह अनन्त युद्ध ही नष्ट करता है जिसने हमारी इच्छाओ को जकड लिया है, और इससे भी अधिक घातक हैं हमारे वे आवेग जिन्होने वर्तमान युग को जैसे सेना का जाल बिछाकर अधिकृत कर रखा है और जो उसे निरन्तर सत्रस्त कर लूट खसोट रहे हैं। क्योकि धन के प्रेम ने (जिस रोग से आज हम सभी बुरी तरह ग्रस्त हैं)

और विषय-भोग के प्रेम ने हमे अपना दास बना लिया है, बल्कि यह कहा जा सकता है कि हमारे शरीर और आत्मा दोनो को अतल गर्त मे डुबा दिया है। धन का प्रेम ऐसा रोग है जो मनुष्य को क्षुद्र बनाता है और विषय भोग का प्रेम उसे निकृष्ट से निकृष्ट बनाता है। विचार करने पर मैं यह नही समझ पाता कि यदि हम अपार सम्पत्ति को इतना अधिक मूल्यवान समझते हैं या और सच कहा जाए तो उसको यदि हमने अपना देवता मान रखा है, तब यह किस प्रकार सम्भव है कि हम धन के साथ अविच्छिन्न रूप मे सम्बद्ध दुगुणो को अपनी आत्मा मे प्रवेश करने से रोक सके। क्योकि अपार और निर्बाध सम्पत्ति अपव्यय के साथ साथ—कदम मिलाकर—चलती है और जसे ही सम्पत्ति नगरो और भवनो के द्वार खोलती है, वसे ही अतिचार प्रवेश कर वही बस जाता है। थोडा-सा समय बीतते ही इनका जोडा मनुष्य के जीवन मे नीड बना लेता है, और जसाकि बुद्धिमान व्यक्तियो ने कहा है, शीघ्र ही वह सन्तानोत्पत्ति मे रत हो जाता है, और आडम्बर, दम्भ एव विलास को जन्म देता है जो उनकी जारज नही वरन् सवथा वध सन्तान हैं। यदि धन की इन सन्तानो को वयस्क होने दिया जाए तो वे तुरन्त ही हमारी आत्मा को उन दुदम्य स्वामियो को सौप देते हैं जिनके नाम हैं—धृष्टता, नियमहीनता और निर्लज्जता। ऐसा होना सवथा अनिवाय है और उसके बाद मनुष्यो म दृष्टि ऊपर उठाने अथवा यश की लालसा करने की कोई क्षमता नही रहती। ऐसा जीवन अन्त मे अपने चरम विनाश को प्राप्त होता है, आत्मा की ऊर्जा फीकी पड जाती है, मुरझाकर झड जाती है और घृण्य हो जाती है। उस समय मनुष्य अपने नश्वर गुणो की प्रशसा मे खो जाते हैं और जो कुछ अमर है उसको गौरव देना भूल जाते हैं। क्योकि जो व्यक्ति एक बार न्यायिक निणय के सम्बन्ध मे घूस स्वीकार कर लेता है, वह किसी न्याययुक्त और सम्मान-पूण काय का निष्पक्ष एव सच्चा निर्णायक नही हो सकता, क्योकि

घूसखोर व्यक्ति को अपने हित ही सबसे अधिक सम्मानयुक्त और न्याय-पूण जान पडते हैं। यही बात उस अवस्था मे भी सही है जब हममे से प्रत्येक व्यक्ति का सारा जीवन घूस से, पर हिंसा के प्रयत्नो से और उत्तराधिकार के लिए षड्यन्त्रो से परिचालित हो जाता है, और जब हममे से प्रत्येक विषय सुख का दास होने के कारण, स्वय जीवन का मोल देकर, कही से भी, लाभ प्राप्त करने मे लग जाता है। ऐसी भयकर महामारियो से ग्रस्त युग मे क्या हम इस बात की कल्पना कर सकते हैं कि महान और भविष्य मे जीवित रहनेवाली रचनाओ के सम्बन्ध मे पक्षपात तथा भ्रष्टाचार से मुक्त निर्णायक हमे मिल सकेंगे ? बल्कि क्या यह अधिक सत्य नही है कि सभी लोग अपने निणय मे लाभ के लोभ से प्रभावित होते हैं ? शायद हमारे जैसे इन्सानो के लिए स्वाधीन होने की अपेक्षा पराधीन रहना ही अधिक श्रेयस्कर है क्योकि यदि हमारी तृष्णाए पिंजडे से निकले हुए पशुओ की भाति अनियन्त्रित रूप मे हमारे पडोसियो पर टूट पडे, तो सारा ससार पाप की अग्नि मे जल उठेगा। सक्षेप मे, मैंने यही मत प्रतिपादित किया है कि हमार युग मे जिस प्रकार के स्वभाव दोष उत्पन्न हो रहे हैं उनमे एक यह भी मानना चाहिए कि कुछेक अपवादो को छोडकर हममे से अधिकाश के जीवन मे उत्साह एव मनोयोग का प्राय अभाव सा रहता है, क्योकि हम प्रशसा अथवा विषय-भोग के अतिरिक्त अन्य किसी उद्देश्य से कोई परिश्रम नही करते। हम उन ठोस हितो के लिए प्रयत्न नही करते जो हमारे प्रयास के उपयुक्त और दूसरो के सम्मान के पात्र हो। किन्तु 'इन पहेलियो को उलझा हुआ छोड देना ही उचित है,' और आगे के विषय पर ध्यान देना चाहिए। यह विषय है 'आवेग' जिसपर मैंने पहले एक स्वतन्त्र निबन्ध लिखने का दायित्व लिया था। मुझे लगता है कि यह विषय (आवेग) साधारणत (समस्त) विवेचन का और स्वय औदात्य का महत्त्वपूर्ण अग है।

नाम-परिचय

[पृष्ठ ४३] १ पोस्तुमिउस तेरेंतिम्रानुस	एक सुशिक्षित रोमन विद्वान और लेखक का मित्र (विशेष विवरण अज्ञात)।
[पृष्ठ ४३] २ कैकिलिउस	आगस्टस सीज़र के काल में सिसिली का एक भाषण शास्त्रकार, विद्वान और शिक्षक। उसकी रचनाएं इतिहास और साहित्यालोचन दोनों ही विषयों पर उपलब्ध हैं।
[पृष्ठ ४५] ३ देमोस्थेनेस	समय ३८३–३२२ ई० पू०। यूनान का विख्यात वक्ता। प्लतोन (प्लेटो), होमर आदि का समकक्षी।
[पृष्ठ ४६] ४ लियोन्तिनी का गोर्गिअस	सिसिली में लियोन्तिनी नामक स्थान का एक भाषण-शास्त्रकार। समय ५०८–४०० ई० पू०।
[पृष्ठ ४६] ५ क्सेरक्सेस	ई० पू० पांचवीं शताब्दी में ईरान का शासक जिसने यूनान पर चढ़ाई की थी।
[पृष्ठ ४६] ६ ज़ेउस (ज़ेयस)	यूनानियों का प्रमुख देवता।
[पृष्ठ ४७] ७ कल्लिस्थेनेस	ई० पू० चौथी शताब्दी का एक इतिहासकार, अरस्तू का भतीजा और शिष्य।
[पृष्ठ ४७] ८ क्लेइतारखुस	ई० पू० चौथी शताब्दी का एक अन्य इतिहासकार जिसकी शैली बहुत अतिरंजनापूर्ण मानी जाती है।
[पृष्ठ ४७] ९ सोफोक्लेस	समय ४९६–४०६ ई०पू०। अथेन्स का विख्यात कवि और त्रासदीकार। कहा जाता है, उसने १२० नाटक लिखे थे जिनमें से अब केवल सात उपलब्ध हैं। इनमें अजक्स, अंतिगोने और ओइदिपुस न केवल यूनानी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ

नाटक है, बल्कि विश्व-साहित्य की अनुपम निधि हैं।

[पृष्ठ ४७] १० अम्फिक्रतेस — अथेनी भाषण शास्त्रकार, जिसकी शैली के शब्दाडम्बर की आलोचना होती है।

[पृष्ठ ४७] ११ हेगेसिअस — मग्नेसिया का विख्यात वक्ता, जिसके ऊपर यूनानी भाषा को एशियाई मुहावरों के प्रयोग द्वारा भ्रष्ट करने का आरोप लगाया जाता है।

[पृष्ठ ४७] १२ मत्रिस — थेबेस का भाषण शास्त्रकार इसमें भी उपयुक्त दोनों भाषण शास्त्रकारों के दोष पाए जाते हैं।

[पृष्ठ ४८] १३ क्योदोरस — गदरवासी एक भाषण शास्त्रकार।

[पृष्ठ ४८] १४ तिमएउस — ई० पू० तीसरी शताब्दी में सिसिली का एक इतिहासकार।

[पृष्ठ ४९] १५ इसोक्रतेस — समय ४३६–३३८ ई० पू०। विख्यात वक्ता, अपनी शैली के माधुर्य और सौन्दर्यपूर्ण सरलता के लिए प्रशंसित।

[पृष्ठ ४९] १६ क्सेनोफोन — समय ४४१–३५६ ई० पू०। अथेन्स का सुप्रसिद्ध सेनापति, इतिहासकार और दार्शनिक सुकरात का शिष्य। उसकी बहुत सी रचनाएं उपलब्ध हैं जिनमें इतिहास-ग्रन्थों के अतिरिक्त वह प्रसिद्ध रचना भी है जिसमें उसने सुकरात के दार्शनिक विचारों को बड़ी प्रामाणिकता और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है।

[पृष्ठ ४९] १७ प्लतोन (प्लेटो) — समय ४२७–३४७ ई० पू०। अथेन्स का विश्व विख्यात दार्शनिक, सुकरात का प्रधान शिष्य। अपने साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ कविता और नाटक रचना से किया था, पर शीघ्र ही बीस वर्ष की अवस्था में सुकरात से परिचय होने पर इसे अपनी रचनाओं से असंतोष हुआ और इसने उन्हें जला दिया। उसके बाद आठ वर्ष तक यह सुकरात का शिष्य रहा। सुकरात की मृत्यु के बाद समस्त यूनान का भ्रमण किया और लौटकर अपने विख्यात शिक्षालय की

स्थापना की, जहा देश भर से विद्वान और यशस्वी विचारक एकत्र होते थे। यह शिक्षालय चालीस वर्ष तक चला। इसी बीच प्लतोन ने अपने सभी विश्वविश्रुत 'संवाद' लिखे जो आज तक आदर और श्रद्धा से पढ़े जाते हैं। प्लतोन की समस्त रचनाए, केवल बारह पत्रों को छोड़कर संवाद शैली में हैं। इनमें सबसे प्रसिद्ध है 'गणतन्त्र', जिसका संसार की प्राय सभी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।

[पृष्ठ ४९] १८ सुकरात — समय ४६९–३९९ ई० पू०। यूनान का महानतम दार्शनिक, मनीषी और शिक्षक। अदम्य निर्भीकता और सत्यप्रियता के कारण तत्कालीन अधिकारियों ने उसे विषपान द्वारा मृत्युदण्ड दिया था। उसकी मृत्यु के बाद अथेन्स वासियों को अपनी भूल का ज्ञान हुआ। सुकरात के जीवन और सिद्धान्तों के विषय में समस्त जानकारी उसके दो प्रधान शिष्यों, प्लातोन और क्सेनोफोन की रचनाओं से ही प्राप्त होती है।

[पृष्ठ ५०] १९ होमेरस (होमर) — विख्यात यूनानी कवि। ईलिअद' (इलियड) तथा ओदुस्सेइआ (ओडिसी) नामक महाकाव्यों का रचयिता। उसके काल का ठीक पता नहीं, पर साधारणतः यह माना जाता है कि वह ई० पू० नवीं शताब्दी के लगभग हुआ होगा। उसके काव्य में मानव हृदय के अत्यन्त सूक्ष्म और गहन अध्ययन के प्रमाण मिलते हैं। अपने काव्य की उदात्तता, शक्ति, माधुर्य और सौंदर्य के कारण उसकी गणना विश्व के सर्वश्रेष्ठ कवियों में होती है।

[पृष्ठ ५०] २० हेरोदोतस — जन्म ४८४ ई० पू०। यूनान का प्रमुख इतिहासकार, 'इतिहास का जनक' माना जाता है। इतिहास के क्षेत्र में उसका स्थान वही है जो

	काव्य के क्षेत्र म होमर का और वक्तता के क्षत्र म देमोस्थेनेम का।
[पष्ठ ५५] २१ अजक्स (अऐक्स यू०)	यूनान का विख्यात योद्धा। उसका नाम वीरो म अखिल्लेस (एचिलीज) के बाद ही आता है। उसके विषय म सोफोक्लेस ने एक त्रासदी भी लिखी है। अजक्स के जीवन के बारे म बहुत सी कथाए प्रचलित हैं।
[पष्ठ ५५] २२ 'ढाल'	हेसिम्रोद नामक कवि की शली के अनुकरण पर लिखी गई एक लम्बी कविता।
[पष्ठ ५५] २३ हेसिम्रोद	ई० पू० आठवी शताब्दी का यूनानी कवि। वह पहला यूनानी कवि था जिसने अपनी कविता के विषय पुराणा के अतिरिक्त अन्य क्षत्रो से चुने थे।
[पृष्ठ ५६] २४ पोसेइडोन	यूनानी समुद्र देवता।
[पष्ठ ५६–५७] २५ त्रिम्र (ट्राय) का घेरा	यूनान का एक नगर जिसे हमर और वर्जिल ने अपने काव्यो म अमर कर दिया है। प्राचीन इतिहास म त्रिम्र की लडाई सबसे प्रसिद्ध है। वह युद्ध यूनानवासियो ने सुन्दरी हेलेन की मुक्ति के लिए किया था, जिसे त्रिम्र का राज कुमार हर ले गया था।
[पष्ठ ५८] २६ अखया	एलिस के उत्तर म कारिन्थ की खाडी पर स्थित यूनान का एक भाग।
[पष्ठ ५८] २७ ओद्युस्सेइग्रा (ओडिसी)	यूनान के महाकवि होमर का महाकाव्य जिसम २४ खडो मे ओद्युस्सउस के त्रिम्र युद्ध के परवर्ती साहसिक कार्यो का वणन है। इस काव्य की घटनावली का समय केवल ५५ दिन है।
[पष्ठ ५८] २८ ईलिउम	त्रिम्र (टाय) नगर का एक दुग। साधारणत इस त्रिम्र का ही दूसरा नाम समझा जाता है।
[पष्ठ ५६] २६ ईलिम्रद	होमर द्वारा रचित प्रधान महाकाव्य जिसकी गणना ससार के सवश्रेष्ठ काव्य-ग्रथो म होती है। इसम भी २४ खड हैं। इसका शीषक इस बात का सूचक है कि इसमे ईलिउम (त्रिम्र) नगर की कथा है। प्रसिद्ध योद्धा

अखिलीज़ का [illegible] द्वारा [illegible] किए जाने के कारण युद्ध हो जाता है, और जिस के युद्ध में भाग [illegible] इनकार कर देता है जिसके फलस्वरूप यूनानी सेना [illegible] तरह [illegible] ही है। [illegible] काव्य [illegible] [illegible] [illegible] का [illegible] मिलता है।

[पृष्ठ ५६] १० अखिलीज़ — ट्रॉय और [illegible] का युद्ध [illegible] जिस युद्ध का सर्वश्रेष्ठ योद्धा। अखिलीज़ [illegible] उसकी माँ ने बचपन में पवित्र नदी में नहलाया था जिसके फलस्वरूप उसका सम्पूर्ण शरीर अभेद्य हो गया था, केवल उसकी एड़ी का वह भाग जहाँ से उसकी माँ ने उसे पकड़ रखा था, नदी के जल में न डूबने के कारण दुर्बल रह गया। इस एड़ी पर ही आघात होने से उसकी मृत्यु भी होती है। ट्रॉय के युद्ध में प्रारम्भ में अपमानित होने के कारण उसने लड़ना अस्वीकार कर दिया था। पर अन्त में अपने मित्र की हत्या से क्रुद्ध होकर उसने समस्त शत्रुओं का विनाश कर डाला। होमर के प्रसिद्ध महाकाव्य 'इलियड' का नायक अखिलीज़ ही है।

[पृष्ठ ५६] ११ पत्रोक्लस — ट्रॉय युद्ध का एक अन्य योद्धा तथा अखिलीज़ का मित्र। युद्ध में उसकी मृत्यु के कारण ही अखिलीज़ अपने अपमान और क्रोध को भूल कर फिर से युद्ध में कूद पड़ा और विजय प्राप्त कर उसने अपने मित्र की हत्या का प्रतिशोध लिया।

[पृष्ठ ६०] १२ सफो — ईसा से लगभग ६०० वर्ष पूर्व की यूनानी कवयित्री जो अपने सौन्दर्य, काव्य प्रतिभा और प्रणयलिप्सा के लिए विख्यात है। अन्य कवि

		ताम्रा के अतिरिक्त उसने गीति काव्य के ही ६ ग्रथ रचे थे। मृत्यु के बाद उसके नाम पर मंदिर बनाए गए और उसकी आकृति सिक्को पर अकित की गई।
[पृष्ठ ६२]	३३ 'अरिमसपेइया	ई० पू० छठी शताब्दी के यूनानी कवि अरिस्ते उस की एक कविता।
[पृष्ठ ६३]	३४ अरतुस	ई०पू० तीसरी शताब्दी का एक यूनानी कवि। उसने एक कविता ज्योतिष पर भी लिखी थी।
[पृष्ठ ६३]	३५ आर्खिलोखुस	ई० पू० सातवी शताब्दी का यूनानी कवि जिसने यूनानी काव्य म कई नये छन्दो का समावेश किया। उसकी उपलब्ध कविताओ मे शक्ति और तीव्रता के प्रचुर प्रमाण मिलते हैं, पर स्पार्तावासियो ने उसके काव्य की ग्राम्य दोषो के लिए निन्दा की थी और उसे नगर से निकाल भी दिया था।
[पृष्ठ ६५]	३६ सिसेरो	जन्म १०६ ई० पू०। रोम का सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ वक्ता और साहित्यकार। सिसेरो ने बहुत-सी यूनानी रचनाओ का अनुवाद भी किया था।
[पृष्ठ ६६]	३७ 'गणतत्र'	यूनानी दार्शनिक प्लतोन की सर्वश्रेष्ठ कृति। प्लतोन की अन्य रचनाओ की भाति यह भी सवाद शैली मे है जिसम न्याय के विषय मे बडी गभीरता और सूक्ष्मता से विचार किया गया है। इस ग्रथ म प्लतोन के समस्त महत्त्वपूर्ण दार्शनिक सिद्धान्तो और विचारो का सार है।
[पृष्ठ ६७]	३८ स्तसीखोरुस	समय ६४० ५५५ ई० पू०। यूनान का गीति काव्यकार। उसने नृत्य सगीत तथा 'ओड' (सबाध गीत) की शैली म बडे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए थे। उसकी शैली गरिमामयी थी और प्राय उसकी तुलना होमर से की जाती है।

[पृष्ठ ६७] ३९ अम्मोनिउस — समय दूसरी शताब्दी ई० पू०। प्रसिद्ध वैयाकरण अरिस्तार्खुस का शिष्य और उत्तराधिकारी।

[पृष्ठ ६८] ४० थुसिदिदेस — पाँचवी शताब्दी ई० पू० में यूनान का महान् इतिहासकार। घटनाओं की प्रमाणपूर्णता, सुस्पष्टता और विषयवस्तु की गंभीर तथा प्रवचना के लिए वह अद्वितीय है। साथ ही उसके वर्णनों में अनुभवजन्य प्रामाणिकता भी है। एक अन्य समकालीन इतिहासकार हेरोदोतस के साथ उसकी तुलना करते हुए कहा जाता है कि हेरोदोतस पाठकों को आकर्षित करने के लिए लिखता था, थुसिदिदेस उनके ज्ञानवर्धन के लिए।

[पृष्ठ ७०] ४१ एउरिपिदेस — समय ४८४-४०७ ई०पू०। यूनान का विख्यात नाटककार। उसने दर्शनशास्त्र की शिक्षा अनक्सागुरस से, नीतिशास्त्र की सुकरात से और वाक्शास्त्र की प्रोतागोरस से पाई थी। उसकी रचनाओं का इतना आदर था कि उसकी पंक्तियाँ सुनाने से दासों को मुक्ति मिल जाती थी। एउरिपिदेस ने ७५ त्रासदियाँ लिखी थीं जिनमें से कुल १९ ही अब उपलब्ध हैं। प्रेम भावना की अभिव्यक्ति में, विशेषकर अधिक सुकुमार और तीव्र प्रेम की अभिव्यक्ति में वह अद्वितीय है।

[पृष्ठ ७०] ४२ फएथोन — सूर्य का एक पुत्र।

[पृष्ठ ७०] ४३ प्लेइअद बहिनें — अतलस की सात पुत्रियाँ। मृत्यु के पश्चात् उन्हें आकाश में स्थान मिला और उन्होंने अपना एक नक्षत्र मंडल बना लिया। प्लेइअद जिस यूनानी शब्द से बना है उसका अर्थ है समुद्र-यात्रा करना। जब यह नक्षत्र मंडल आकाश में उदित होता है, तो वह समय समुद्र-यात्रा के लिए शुभ होता है।

ताम्रो के अतिरिक्त उसने गीति काव्य के ही ६ ग्रंथ रचे थे। मत्यु के बाद उसके नाम पर मदिर बनाए गए और उसकी आकृति सिक्को पर अकित की गई।

[पष्ठ ६२] ३३ 'अरिमसपेइया — ई० पू० छठी शताब्दी के यूनानी कवि अरिस्ते उस की एक कविता।

[पष्ठ ६३] ३४ अरतुस — ई०पू० तीसरी शताब्दी का एक यूनानी कवि। उसने एक कविता ज्योतिष पर भी लिखी थी।

[पृष्ठ ६३] ३५ आर्किलोखुस — ई० पू० सातवी शताब्दी का यूनानी कवि जिसने यूनानी काव्य म कई नये छदो का समावेश किया। उसकी उपलब्ध कविताम्रो मे शक्ति और तीव्रता के प्रचुर प्रमाण मिलते हैं पर स्पार्तावासियो ने उसके काव्य की ग्राम्य दोषो के लिए निन्दा की थी और उसे नगर से निकाल भी दिया था।

[पृष्ठ ६५] ३६ सिसेरो — जन्म १०६ ई० पू०। रोम का सुप्रसिद्ध राज नीतिज्ञ, वक्ता और साहित्यकार। सिसेरो ने बहुत-सी यूनानी रचनाम्रो का अनुवाद भी किया था।

[पष्ठ ६६] ३७ 'गणतन्त्र' — यूनानी दार्शनिक प्लतोन की सवश्रेष्ठ कृति। प्लतोन की अन्य रचनाम्रा की भाति यह भी सवाद शली मे है जिसम न्याय के विषय म बडी गभीरता और सूक्ष्मता स विचार किया गया है। इस ग्रंथ मे प्लतोन के समस्त महत्त्व पूर्ण दार्शनिक सिद्धान्ता और विचारा का सार है।

[पृष्ठ ६७] ३८ स्तसीखोरुस — समय ६४० ५५५ ई० पू०। यूनान का गीति काव्यकार। उसने नत्य, सगीत तथा 'ओड' (सबोध-गीत) की शली म बडे महत्त्वपूर्ण परिवतन किए थे। उसकी शली गरिमामयी थी और प्राय उसकी तुलना होमर से की जाती है।

[पृष्ठ ६७] ३६ अम्मोनिउस — समय दूसरी शताब्दी ई० पू० । प्रसिद्ध वयाकरण अरिस्तारखुस का शिष्य और उत्तराधिकारी ।

[पष्ठ ६८] ४० थुक्युदिदेस — चौथी शताब्दी ई० पू० मे यूनान का महानतम इतिहासकार । वणना की प्रभावपूणता, सुस्पष्टता और विषयवस्तु की शक्ति तथा प्रवलता के लिए वह अद्वितीय है । साथ ही उसके वणनो मे अनुभवजन्य प्रामाणिकता भी है। एक अन्य समकक्ष इतिहासकार हरोदोतस के साथ उसकी तुलना करते हुए कहा जाता है कि हरोदोतस पाठको को आकर्षित करने के लिए लिखता था थुक्युदिदेस उनके ज्ञान वधन के लिए ।

[पष्ठ ७०] ४१ एउरिपिदेस — समय ४८५ ४०७ ई०पू०। यूनान का विख्यात नाटककार । उसने वक्तृता-कला की शिक्षा प्रादिकुस से नीतिशास्त्र की सुकरात से और दशनशास्त्र की अनक्सगोरस से पाई थी। उसकी रचनाओ का इतना आदर था कि उसकी पक्तिया सुनाने से दासो को मुक्ति मिल जाती थी। एउरिपिदेस ने ७८ नाटक लिखे थे जिनमे से कुल १९ ही अब उपलब्ध हैं। प्रेम भावना की अभिव्यक्ति मे विशेषकर अधिक सुकुमार और तीव्र प्रेम की अभिव्यक्ति में, वह अद्वितीय है।

[पृष्ठ ७०] ४२ फएथोन — सूय का एक पुत्र ।

[पृष्ठ ७०] ४३ प्लेइअद बहिनें — अतलस की सात पुत्रिया । मत्यु के पश्चात उन्हें आकाश म स्थान मिला और उन्होने अपना एक नक्षत्र-मडल बना लिया । प्लेइअद जिस यूनानी शब्द से बना है उसका अथ है समुद्र-यात्रा करना । जब यह नक्षत्र मण्डल आकाश में उदित होता है तो वह समय समुद्र-यात्रा के लिए शुभ होता है।

[पृष्ठ ७०] ४४ कसान्द्रा
प्रिग्रम और हेक्यूबा की पुत्री, जिसे अपोल्लो बहुत प्यार करता था। उसने वचन दिया था कि यदि तुम मेरा प्रेम स्वीकार करो तो मैं तुम्हारी मुहमांगी इच्छा पूरी कर दूंगा। कसान्द्रा ने भविष्य ज्ञान की मांग की। पर मांग पूरी होते ही उसने अपोल्लो की प्रणय याचना को अस्वीकार कर दिया। इसपर अपोल्लो ने उसे अभिशाप दिया कि बात सच होने पर भी कभी कोई उसका विश्वास नहीं करेगा।

[पृष्ठ ७१] ४५ एस्क्युलस
जन्म ५२५ ई० पू०। यूनान का सर्वश्रेष्ठ त्रासदीकार। उसके ६० नाटकों में अब केवल ७ उपलब्ध हैं। इनमें 'बंदी प्रोमेथियस' तथा 'अगमेमनोन' जैसे विश्वविख्यात नाटक भी हैं। 'अगमेमनोन' को तो प्रायः संसार का सर्वश्रेष्ठ नाटक कहा जाता है।

[पृष्ठ ७१] ४६ थेबेस के सात शत्रु'
एस्क्युलस का एक नाटक जिसमें युद्ध और युद्ध के देवता का चित्रण है।

[पृष्ठ ७१] ४७ आरेस
यूनानी युद्ध-देवता।

[पृष्ठ ७१] ४८ एन्यो
रोमी युद्ध देवता मार्स की बहिन।

[पृष्ठ ७१] ४९ पनिक
यूनानी देवता जिनकी डरावनी सूरत देखकर लोगों को बड़ा भय होने लगता था।

[पृष्ठ ७१] ५० दिम्रो-युसुस
यूनानी सुरा-देवता।

[पृष्ठ ७२] ५१ ओइदिपुस (ईडिपस)
थेबस के राजा लइउस और रानी जोकास्ता का पुत्र जिसे अभिशाप था कि वह अपने पिता का हत्यारा और अपनी ही माता का पति होगा। यह अभिशाप कालान्तर में परिस्थिति वश अनजान ही प्रतिफलित हुआ और जब ओइदिपुस को इसका पता चला तो उसने आत्महत्या कर ली। प्रसिद्ध त्रासदीकार सोफोक्लेस ने इस कथा पर बड़ी ही मार्मिक त्रासदी लिखी है। ओइदिपुस के जीवन की इस

परिस्थिति के आधार पर आधुनिक मनो विश्लेपण-शास्त्री फ्रायड ने ग्राइदिपुस ग्रथि (मात रति) का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है।

[पृष्ठ ७२] ५२ सिमोनीदेस — समय ५५६–४६८ ई० पू०। सेग्रोस का एक कवि जिसने अपनी एक लम्बी कविता मे अखिल्लेस के प्रेत का बडा विशद वणन किया है।

[पृष्ठ ७२] ५३ ग्रोरेस्तेस — एउरिपिदेस के एक नाटक का नायक। वह अगमेमनोन और क्ल्युतेम्नेस्त्रा का पुत्र था। उसकी मा ने अपने एक प्रेमी की सहायता से उसके पिता का वध कर डाला था। बडे होने पर ग्रोरेस्तेस ने अपनी मा और उसके प्रेमी दोना को मारकर अपने पिता की मृत्यु का बदला लिया था।

[पृष्ठ ७३] ५४ ह्यूपेरिदेस — एक ग्रथेनी वक्ता। समय चौथी शताब्दी ई० पू०। सुकरात और प्लतोन का शिष्य।

[पृष्ठ ७५] ५५ एउपोलिस — ग्रथेन्स का एक व्यंग्यकार। समय पाचवी शताब्दी ई० पू०। इसने अपने युग के दोषो और अनतिकताग्रा पर बडा तीव्र प्रहार किया है।

[पृष्ठ ७६] ५६ एस्खिनेस — ई० पू० चौथी शताब्दी का एक वक्ता, जो देमोस्थेनेस का प्रतिस्पर्धी समझा जाता था।

[पृष्ठ ७६] ५७ एउरुबुलोस — प्रसिद्ध योद्धा उल्युस्सेस (यूलिसिस) का एक साथी जो बडा चतुर और बुद्धिमान था।

[पृष्ठ ८०] ५८ मेइदिग्रास — देमोस्थेनेस का समकालीन तथा उसका एक धनी विपक्षी। देमोस्थेनेस ने इसके विरुद्ध एक भाषण तयार किया था जो बाद म कही दिया नही गया।

[पृष्ठ ८४] ५९ ओकास्ता — ग्रोइदिपुस की मा जो शापवश बाद मे उसकी पत्नी भी बनी।

[पृष्ठ ८४] ६० हेक्तोर — राजा प्रिग्रम और हेक्युवा का पुत्र तथा त्रिग्र (ट्राय) का सवप्रमुख वीर जो यूनानियो के हाथो मारा गया।

[पृष्ठ ८४] ६१ सरपेदोन — जुपिटर का पुत्र। त्रिय-युद्ध मे प्रियम की सहायता के लिए गया था और बहुत-से शत्रुओ का नाश करने के बाद मारा गया।

[पृष्ठ ८५] ६२ पलोपोन्नेसस — यूनान का धुर-दक्षिणी भाग।

[पृष्ठ ८५] ६३ फ्रुनिखुस — ई० पू० ५१२–४७६ का एक यूनानी त्रासदीकार जिसके नाटको मे नाटकीय व्यापार अथवा चरित्र के विकास का अभाव होता था। उसके एक नाटक 'मिलेतुस की पराजय' से अथेनी नागरिक इतने दुःखी हुए कि उसे जुर्माना देना पडा।

[पृष्ठ ८६] ६४ क्युरस — ईरान का एक राजा जिसका जीवन चरित क्सेनोफोन ने लिखा है।

[पृष्ठ ८६] ६५ ऐलिफन्तीनि — मिस्र मे नील नदी के बीच एक द्वीप पर स्थित नगर।

[पृष्ठ ८६] ६६ मेरोए — एथिओपिया का एक नगर।

[पृष्ठ ८७] ६७ हेकातउस — ई० पू० छठी शताब्दी का एक इतिहासकार।

[पृष्ठ ८७] ६८ कीइक्स — त्रखीनिया का एक राजा।

[पृष्ठ ८८] ६९ अरिस्तोगेइतोन — एक प्रसिद्ध अथेनी नागरिक जिसने ई० पू० छठी शताब्दी मे अपने देश को विदेशी दासता से मुक्ति दिलाने मे बडा काम किया था।

[पृष्ठ ८८] ७० पनेलोपे — यूनान की एक प्रसिद्ध राज-युवती और उत्युस्सेस (यूलिसिस) की पत्नी।

[पृष्ठ ९०] ७१ 'विधि-संहिता' — प्लतोन का एक ग्रथ।

[पृष्ठ ९१] ७२ अनाक्रेओन — छठी शताब्दी ई० पू० का प्रसिद्ध गीतकार। उसकी कविता माधुर्य और सौष्ठव के लिए बडी प्रसिद्ध है।

[पृष्ठ ९१] ७३ थेओपोम्पस — ई० पू० चौथी शताब्दी का प्रसिद्ध यूनानी इतिहासकार। उसकी तुलना थुक्युदिदेस और हेरोदोतस जैसे इतिहासकारो से की जाती है पर कुछेक उद्धरणो को छोडकर उसकी कोई रचना अब अलग से नही मिलती।

[पृष्ठ ९२] ७४ अरस्तू — समय ३८४–३२२ ई० पू०। विख्यात दार्शनिक

मनीषी , प्लतोन का शिष्य। उसने अपने युग के समस्त ज्ञान क्षेत्र को प्रभावित किया था। यूरोप की परवर्ती चिन्ताधारा पर उसका प्रभाव सर्वव्यापी रहा है। उसके 'काव्य शास्त्र' 'राज नीति', 'नीतिशास्त्र', 'भौतिकी' आदि ग्रथ न केवल अपने युग के सर्वश्रेष्ठ ग्रथ थे, वरन आज भी उनकी श्रेष्ठता निर्विवाद है।

[पृष्ठ ६२] ७५ थेओफास्तुस — समय ३७२–२८७ ई० पू०। प्लतोन और अरस्तू का शिष्य जिसने वैज्ञानिक विषयों पर ग्रथ लिखे हैं।

[पृष्ठ ६५] ७६ ल्युसिअस — ई० पू० पाचवी चौथी शताब्दी का एक विख्यात वक्ता। उसकी शैली सरलता और शुद्धता के लिए प्रसिद्ध है।

[पृष्ठ ६६] ७७ अपोलोनिउस — मिस्र का एक कवि जिसने एक विशाल महाकाव्य लिखा है। शैली और भाषा कृत्रिम होते हुए भी रोमानी काव्य मे उसका अपना स्थान है।

[पृष्ठ ६७] ७८ थेओक्रितुस — ई० पू० तीसरी शताब्दी का एक यूनानी कवि। यह गोचारण-काव्य का जन्मदाता माना जाता है।

[पृष्ठ ६७] ७९ एरातोस्थेनेस — ई० पू० तीसरी शताब्दी का एक यूनानी कवि। ज्यामिति के क्षेत्र मे अपनी विशेष देन के कारण इसे दूसरा प्लतोन भी कहा जाता है।

[पृष्ठ ६७] ८० पिंदार — पाचवी शताब्दी ई० पू० मे थेबस का विख्यात कवि। उसकी कविता माधुर्य से ओत प्रोत है। कहा जाता है कि बचपन मे एक बार उसके होठो पर मधुमक्खियो का एक झुण्ड बैठ गया था जो अपना सारा सचित मधु उसके होठो पर छोड गया था। अपने जीवन मे और मृत्यु के बाद उसे अपने देशवासियो से अधिक से अधिक आदर और स्नेह प्राप्त हुआ। उसका काव्य मात्रा की उदात्तता, अभिव्यक्ति की

गरिमा, शैली की भव्यता और पदावली के सौष्ठव के लिए प्रसिद्ध है।

[पृष्ठ ९७] ८१ बक्य्लिदेस — जन्म ई० पू० ५०७। यूनान का गीतिकार। इसने भी प्रशस्तियां तथा गीत लिखे हैं पर इसकी रचनाओं में पिंदार की सी भव्यता नहीं है।

[पृष्ठ ९७] ८२ इयोन — यूनान का एक त्रासदीकार जिसकी अपने जीवन में बड़ी प्रशंसा हुई, पर जिसकी रचनाओं में अन्य त्रासदीकारों की सी गरिमा का अभाव है।

[पृष्ठ १०२] ८३ कोलोस्सुस — रोदेस की विश्वविख्यात पीतल की मूर्ति जिसे संसार की नौ आश्चर्यजनक वस्तुओं में गिना जाता है। यह मूर्ति १०५ फुट ऊंची है और इतनी बड़ी है कि उसके दोनों पैरों के बीच से बड़ा जहाज निकल सकता है। ईसा से ३०० वर्ष पूर्व इसका निर्माण हुआ था और इसे बनाने में १२ वर्ष लगे थे।

[पृष्ठ १०२] ८४ पोल्युक्लेइतुस — २३२ ई० पू० का एक विख्यात मूर्तिकार। अपने समय में वह सर्वश्रेष्ठ कलाकार माना जाता था। उसकी मूर्तियां अपनी निर्दोषता के लिए प्रसिद्ध हैं।

[पृष्ठ १०७] ८५ फिलिस्तुस — ई० पू० चौथी शताब्दी में मिलेतुस का एक संगीतकार। उसने सिसिली का एक इतिहास भी लिखा है।

००००